(१६६)

साधारण ज्ञानसे ऐसा ख़याल होता है, कि रोगीके सम्पूर्ण रोग-लक्षणोंके सदृश यदि आभ्यन्तरिक ओषधी दी जाती है, तो बाहरी ओषधोका भी बाहरसे प्रयोग करनेमें हानि ही क्या है। ऐसी धारणा होती है, कि इस प्रकार ओषधीका भीतरी और बाहरी प्रयोग करने पर रोग और भी शीघ्रताके साथ दूर हो जायेगा।

(१६७)

परन्तु सच पूछिये, तो इस प्रकारकी चिकित्सा-पद्धति ठीक नहीं बतायी जा सकती। चाहे सोरा-जनित दोषसे कोई चर्म-रोग हो या गरमी अथवा साइकोसिस द्वारा उत्पन्न कोई स्थानीय रोग हो, किसीमें भी आभ्यन्तरिक ओषधोके साथ-ही-साथ यदि बाहरी ओषधोका (प्रलेप आदिका) प्रयोग किया जायेगा, तो सबसे बड़ी कठिनाई यह होगी, कि भीतरी ओषधीके द्वारा रोग जड़से दूर होनेके पहलेही बाहरवाले लक्षण दूर हो जायेंगे। ऐसा होनेसे चिकित्सकको यह नहीं मालूम होता है, कि मूल रोग जड़से दूर हुआ या नहीं।

(१६८)

जिन ओषधियोंके आभ्यन्तरिक सेवनसे रोगका जड़से दूर होजाना निश्चित है, उन ओषधियोंका भी बाहरी प्रयोग करना नहीं चाहिये। क्योंकि उसके बाहरी प्रयोगसे भीतरी रोग दूर

होनेके पहलेही अगर रोगके बाहरी लक्षण दूर हो जायें, तो भीतरी रोगके चिकित्साका मार्ग अन्धकारपूर्ण हो जायेगा। और जिस रोगमें या जिन रोगोंमें बाहरी लक्षण ही, रोगका सच्चा स्वरूप जाननेके एक मात्र साधन हैं, उन रोगोंमें इन बाहरी लक्षणोंके दूर हो जानेसे ओषधोका पार्थक्य निर्णय करना असम्भव सा हो जाता है। ऐसी बीमारियोंमें बाहरी लक्षणोंके दूर हो जानेपर रोगका जो कुछ अंश भीतर रह जाता है, वह स्पष्ट रूपसे दिखाई नहीं देता है, इसलिये उससे रोगका चित्र ठीक-ठीक अङ्कित नहीं हो सकता है।

(१६६)

यदि किसी घाव या फोड़ेकी चिकित्सा करते समय रोगीके समस्त रोग-लक्षणोंको पहले देखकर ओषधीका निर्वाचन नहीं कर लिया जाये, और पहलेही घावको सुखानेके लिये कोई ओषधी दे दी जाये या छुरीकी सहायतासे घावका मुँह खोल दिया जाये, तो पीछे अकसर सम्पूर्ण रोग दूर करना कठिन हो जाता है। क्योंकि घावको ऊपरी प्रयोगोंद्वारा सुखा देने या उसका मुँह खोल देनेसे मूल रोगके बहुतसे विशेषतापूर्ण लक्षण छिप जाते हैं। ऐसा करनेसे सदृश-चिकित्सा-विधानके अनुसार न तो ओषधीकाही निर्वाचन हो सकता है और न रोगही जड़से दूर हो सकता है। अतएव ऐसी अवस्थामें बाहरी कोई प्रयोग करनेके बदले आभ्यन्तरिक ओषधीका ही प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

(२००)

यदि आभ्यन्तरिक चिकित्साकी सहायता करनेके लिये उपर्युक्त बाहरी लक्षण मौजूद होते हैं, तो सम्पूर्ण रोगके लक्षणोंके सदृश लक्षणोंवाली ओषधीका निर्वाचन करना बहुत सम्भव होता है। और जबतक वे बाहरी लक्षण दूर नहीं हो जाते, तबतक यह समझा जा सकता है, कि रोग जड़से दूर नहीं हुआ है। इसलिये बाहरी लक्षणोंके दूर हो जानेतक हम भीतरी ओषधीका सेवन करा सकते हैं। हाँ, अगर ओषधीकी आभ्यन्तरिक क्रियाके फल-स्वरूप वे बाहरी लक्षण और सब लक्षणोंके साथ दूर हो जायें, तो हमलोग निस्सन्देह होकर समझ सकते हैं, कि रोग सम्पूर्ण-रूपसे दूर हो गया है और रोग दूर करनेकी हमारी इच्छा पूर्ण हो चुकी है।

(२०१)

यह अकसर देखा जाता है, कि जब कभी जीवनी-शक्ति किसी प्राचीन रोग द्वारा बुरी तरह जकड़ गयी है, और वह आपही अपने बलसे रोग-मुक्त नहीं हो सकती है, तब वह शरीरके बाहरी हिस्सोंपर स्थानीय लक्षण प्रकट करने की कोशिश करने लगती है। ऐसा करनेसे रोगके लक्षण शरीरके उन अङ्गोंपर (अर्थात् त्वचा आदि पर) प्रकट होते हैं, जिनपर रोगके बढ़नेसे आकस्मिक मृत्यु होनेकी सम्भावना नहीं होती। यदि ये रोग-लक्षण क्रमशः बढ़ने जायें, तो शरीरके उन भीतरी

मूल्यवान् अंगोंपर फैल सकते हैं, जिनपर पीड़ा बढ़नेसे आकस्मिक मृत्यु होनेकी सम्भावना होती है; परन्तु वे जबतक ऊपरी अंगोंपर फैले रहते हैं, तबतक वे चुपचाप रहते हैं। अथवा यों समझिये, कि जीवनी-शक्ति रोगको शरीरके भीतरसे हटाकर बाहरी अंगपर ला देती है और कुछ समयतक उसे स्थानीय रोगके रूपमें रखती है; परन्तु ऐसी अवस्थामें यह समझना ठीक नहीं, कि रोग सम्पूर्ण रूपसे बाहर निकल आया है। वास्तवमें ये स्थानीय रोग भीतरी मूल रोगके एक हिस्सेके सिवा और कुछ नहीं हैं। और वह जीवनी-शक्तिको विशेष क्रिया की सहायतासे भीतरी रोगकाही कुछ अंश विकसित होकर बाहर प्रकट हो आता है। ऐसी अवस्थामें भीतरी पीड़ा कुछ समयके लिये कम हो जाती है। पर इस प्रकार आभ्यन्तरिक पीड़ाओंके कुछ समयके लिये रुक जानेपर भी वे भीतर-ही-भीतर उन लक्षणोंको और भी बढ़ानेकी चेष्टा किया करती हैं। साथही दूसरी तरफ प्रकृति भी, आन्तरिक पीड़ाओंको जबतक सम्भव है, तबतक दबाये रखनेके लिये बाहरी लक्षणोंको क्रमशः बढ़ाती जाती है। इस प्रकार जबतक पुराना, सोरा-जनित रोग जड़से दूर नहीं हो जाता है, तबतक वह क्रमशः बढ़ता ही जाता है। गरमीसे होनेवाले घाव भी जबतक गरमीका विष दूर नहीं हो जाता है, तबतक बढ़तेही जाते हैं।

(२०२)

जब कभी एलोपैथिक चिकित्सा-विधानके (या मद्दल

चिकित्सा-विधानके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा-विधानोंके) अनुकूल चलनेवाले चिकित्सक लोग स्थानीय लक्षणोंको (Local symptoms) बाहरी प्रयोगोंद्वारा दूर करनेकी चेष्टा, मूल-रोगको नष्ट करनेकी आशासे करते हैं, तभी उस रोगके जो अंश भीतर छिपे हुए सोये रहते हैं, उन्हें प्रकृति जगाकर उत्तेजित कर देती है। अर्थात् स्वयं प्रकृति उन भीतरी रोग-लक्षणोंको बढ़ा देती है।

जब कभी ऐसा होता है, तब यही ख़याल किया जाता है, कि इन बाहरी ओषधियों या प्रयोगोंके कारणही स्थानीय रोगलक्षण लुप्त हो गये हैं, परन्तु ऐसा ख़याल करना ग़लत है।

(२०३)

जब कभी स्थानीय लक्षणोंको दूर करनेके लिये बाहरी प्रयोग किये जाते हैं, तभी भीतरी मूल-रोग छिपकर रोगीके शरीरके अन्दर बैठ जाता है। सोरा-जनित गोटियों या फोड़ोंको मल्हमकी सहायतासे चमड़ेके ऊपरसे हटा देने, गरमीसे होनेवाले घावोंको (Chancres) काष्टिक (Caustic) द्वारा जला डालने या साइकोसिस-जनित फोड़ोंको (Condylometa) छुरीकी सहायतासे काटकर अलग कर देनेकी चेष्टा करना आदि इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकारकी बाह्य [illegible] कारण, जो बहुतही पुराने ज़मानेसे [illegible] जातिमें सैकड़ों हज़ारों [illegible] रोग फैलते

चले आ रहे हैं। शासकवर्गकी ओरसे प्रजाजनोंके लिये कोई अपराध करनेपर दण्ड देनेकी व्यवस्था है, पर बड़े दुःखकी बात है, कि चिकित्सकोंके इस महान् अपराधके लिये किसी सरकारने कोई सज़ा देनेकी व्यवस्था नहीं की है। सच पूछिये, तो ऐसे चिकित्सकोंको इस भयंकर अपराधके लिये सबसे बड़ी और कड़ी सज़ा देनी चाहिये। ये चिकित्सक लोग आजतक अपनी गद्दीपर बैठकर इसी प्रकारकी दुष्परिणाम-जनक चिकित्सा करते और मानव समाजको इसी चिकित्सा-प्रणालीकी शिक्षा देते चले आते हैं।

(२०४)

आजतक संसारमें जितने प्रकारके पुराने रोग होते देखे जाते हैं, वे या तो अस्वास्थ्यकर रीतिसे जीवन बिताने, अवैज्ञानिक रीतिसे चिकित्सा करने या हानिकर ओषधियोंके सेवन करनेसे उत्पन्न होते हैं। अथवा गरमी (Syphilis), साइकोसिस (Sycosis) और सोरा-जनित दोषोंके कारण उत्पन्न होते हैं। अधिक दिनोंतक ठहरनेवाले प्रायः सभी पुराने रोग इन्हीं, पिछले तीन प्राचीन रोगोंके रोग-बीजसे उत्पन्न होते हैं। ये सोरा, गर्मी और साइकोसिस—अपने प्राथमिक रोग-लक्षण उत्पन्न करनेके पहले समूचे शरीरपर अपना अधिकार कर लेते हैं। सोरा अपना प्राथमिक लक्षण खुजली आदिके रूपमें प्रकट करता है। गरमी अपना प्राथमिक लक्षण बाघी और घाव आदिके (Chancere) रूपमें और साइकोसिस पिड़काके (Condylometa)

(१५३)

रूपमें प्रकट करता है। ये प्राथमिक लक्षण ख़ास करके शरीरके बाहरी पर्देपर ही प्रकट होते हैं। और जबतक ये बाहरी लक्षण मौजूद रहते हैं, तबतक उस रोगके भयंकर और विपज्जनक लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। प्राचीन रोगोंके इन बाहरी लक्षणोंके दूर होते ही प्रकृति बड़ी तत्परताके साथ उन रोगोंके भीतरी अत्यन्त कष्टदायक लक्षणोंको प्रकट करने लगती है। ये सब रोग सैकड़ों हज़ारों वर्षों से मानव-जातिकी महा-भयंकर हानि करते चले आते हैं। चिकित्सक लोग अगर मालिश या बाहरी ओषधियोंका प्रयोग न करते और सदृश चिकित्सा-विधानके अनुसार क्रिया करनेवाली ओषधियोंका ज्ञान रखते, तो ये सब उत्कट और भयंकर व्याधियाँ उत्पन्नही नहीं होतीं।

(२०५)

होमियोपैथिक चिकित्सक कभी इन प्राचीन रोगोंमें केवल मात्र प्राथमिक या गौण लक्षणोंको दूर करनेके लिये बाहरी ओषधियोंका प्रयोग नहीं करते (अर्थात् वे केवल जीवनी-शक्ति-पर क्रिया करनेके लिये अथवा केवल जड़ शरीरपर क्रिया करनेके लिये बाहरी या ऊपरी प्रयोग नहीं करते हैं)। वे लोग ऐसी ओषधी सेवन करनेको देते हैं, जो शरीरके भीतरी अङ्गमें प्रवेश कर रोगके मूल कारणोंको दूर कर डालती है और मूल कारणोंके विनष्ट होते ही बाहरी लक्षण भी आप-से-आप दूर हो जाते हैं। जब कभी कोई रोगी ऐलोपैथिक चिकित्सकोंसे उनकी चिकित्सा

कराके होमियोपैथके पास चिकित्सा करानि आता है, तभी यह देखा जाता है, कि उन लोगोंने अपनी बाहरी ओषधियोंका प्रयोग कर स्थानीय लक्षणोंको इस प्रकार नष्ट कर डाला है, कि उसके परिणाम स्वरूप सब भीतरी रोग ख़ासकर सोरा जनित रोग—अपने आभ्यन्तरिक गौण-लक्षणोंको एक-एक करके प्रकट करते हैं। इसलिये उन लक्षणोंका निरीक्षण करनेमें एक चिकित्सक अगर कईवर्ष बिता दे, तब कहीं उनका ठीक-ठीक पता लग सकता है। मैंने (हैनिमैनने) प्राचीन रोगोंके इन लक्षणों तथा उनकी चिकित्साके विषयमें अपने लिखे "क्रानिक डिज़ीज़" (Chronic disease) "प्राचीन रोगतत्व" नामक ग्रन्थमें विस्तार-पूर्वक सब बातें लिखो हैं। हर आम-ओ-खाससे मेरा अनुरोध है, कि वे एक बार उस पुस्तकको भी अवश्य देख जायें।

(२०६)

प्राचीन रोगोंकी चिकित्सा आरम्भ करनेके पहले रोगीके शरीरमें गरमीके घाव या सूज़ाक है या नहीं, यह देख लेना चिकित्सकके लिये अत्यावश्यक है। क्योंकि अगर ये रोग हों, तो पहले गरमी या सूज़ाकका ही इलाज करना चाहिये। परन्तु अब्तक (हैनिमैनके ज़मानेमें) ये दोनों रोग अकसर अलग-अलग नहीं दिखाई देते। खासकर एकही साथ दिखाई देते हैं। इन प्राचीन रोगोंकी चिकित्सा करते समय अगर यह देखा जाये, कि रोगीके सब लक्षण ठीक-ठीक गरमीके लक्षणोंसे मिलते-

जुलते नहीं हैं, तो परीक्षण-पर्यावेक्षणके द्वारा जाना जा सकता है, कि रोगीके शरीरमें उसके पहलेसे ही सोरा (Psora) मौजूद है और 'सोरा' तथा 'गरमी' दोनों एक दूसरेसे मिल गये हैं। इसीसे जब कभी चिकित्सकको गरमी या सूज़ाककी चिकित्सा करनी पड़ती है, तभी उस रोगीमें सोराका भी प्रकोप पाया जाता है। गरमी और सूज़ाकके अतिरिक्त जितनी पुरानी बीमारियाँ होती हैं, सबका मूल कारण आभ्यन्तरिक सोरा ही है। जब किसी आदमीको सूज़ाक या गरमीकी बीमारी होती है, तब सोरा उन बीमारीयोंके साथ मिलकर तरह-तरहकी पुरानी बीमारियोंको उत्पन्न करता है। परन्तु इन तरह-तरहकी पुरानी बीमारियोंका नाम और कार्य भिन्न प्रकारके होनेपर भी वास्तवमें इन सबका एक मात्र मूल कारण सोराही है! इन पुरानी बीमारियोंके साथ ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार दी जानेवाली ओषधियोंके मिल जानेपर इन रोगोंके स्वरूप और भी विकृत और भयंकर हो जाते हैं।

(२०७)

होमियोपैथिक चिकित्सकके पास जब कोई ऐसा रोगी चिकित्सा कराने आये और चिकित्सकको रोगीके रोगके विषयमें उपर्युक्त बातें मालूम हो जायें, तो उसे सबसे पहले यह जान लेना चाहिये, कि उस रोगीको उक्त रोगको दूर करनेके लिये कौन-कौनसी ऐलोपैथिक ओषधियाँ दी गयी हैं, उनमेंसे

कौन-कौनसी ओषधी विशेष हानिकर है, तथा कौनसी बार-बार और अधिक परिमाणमें दी गयी है। साथही यह भी जान लेना आवश्यक है, कि रोगीके ऊपर किसी धातु मिश्रित जलका प्रयोग किया गया है या नहीं। यदि किया गया हो, तो किस धातुके जलका, यह भी जान लेना चाहिये। इन सब बातोंके जान लेनेसे तथा रोगोंकी क्रियाको जान लेनेसे चिकित्सक आपही यह बात समझ सकते हैं, कि रोगका पहला स्वरूप कैसा था, और अब विकृत हो कर वह किस रूपमें आ गया है। अतएव रोगकी दोनों अवस्थाओंके स्वरूपको भली-भाँति जान लेनेके बाद उन कुचिकित्सा-जनित दोषोंको दूर करनेमें होमियो-पैथको विशेष सुभीता होगा। साथही उन्हें यह भी मालूम हो जायेगा, कि किस ओषधीका कैसा असर पड़ा है; इसलिये वे उन ओषधियोंका प्रयोग नहीं करेंगे। *

---

* जैसे, अत्यन्त अधिक कुइनाइनके सेवनसे जो दुष्परिणाम होता है, उसे दूर करनेके लिये, आर्सेनिक, इपिकाक आदि ओषधियाँ दी जा सकती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि रोगीको आर्सेनिक बहुत मात्रामें देनेपर उसके रोगके साथ आर्सेनिक-जनित रोग-लक्षण मिल जाते हैं। परन्तु यदि होमियोपैथको यह मालूम ही हो जायेगा, कि रोगीको आर्सेनिक बहुत परिमाणमें दिया गया है, तो वह फिर और आर्सेनिक नहीं देगा।

(२०८)

इसके बाद रोगीकी उम्र, उसके रहनेकी जगह, उसके रहनेके तौर-तरीके, उसका भोजन, उसका नित्यका कार्यक्रम और उसकी आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक अवस्था—इन सब बातोंको बहुत ग़ौरसे देखना चाहिये। इन सब बातोंको विशेष रूपसे देखनेसे यह मालूम हो जायेगा, कि उनमेंसे किसी एकके कारण रोगीकी बीमारी बढ़ती तो नहीं है अथवा उनमेंसे किसी एकके कारणसे चिकित्साका अच्छा परिणाम होनेमें कोई बाधा तो नहीं पड़ती है। इसी प्रकार रोगीकी मानसिक अवस्थाको और उसके स्वभावको भी विशेष रूपसे जान लेना चाहिये, इससे यह मालूम हो जायेगा, कि उनके कारण रोग बढ़ता है या नहीं। कभी-कभी रोगीके मनमें उत्साह या साहस भरनेकी भी ज़रूरत पड़ती है।

(२०९)

इन सब परीक्षाओंके बाद भी रोगीके साथ चिकित्सकको वैसा व्यवहार करना चाहिये, जैसा हम पहले कह आये हैं। उसे तरह-तरहसे प्रश्नकर उसके रोगके समस्त लक्षणोंका भली-भाँति जान लेना चाहिये। ऐसा करनेसे रोगके विशेषतापूर्ण लक्षणोंका पता लग जाता है और चिकित्सककी आँखोंके आगे रोगका सम्पूर्ण चित्र खिँच जाता है। विशेषतापूर्ण रोग-लक्षणोंके मालूम हो जानेपर उन्हींके सदृश लक्षण उत्पन्न करने-

वाली ओषधीका निर्वाचन किया जा सकता है। और उसी ओषधीके द्वारा उस रोगीकी चिकित्सा आरम्भ की जा सकती है। इस प्रकार निर्वाचितकी गयी ओषधी सोरा-नाशक हो या और ही प्रकारको हो, उससे कुछ आता-जाता नहीं है।

(२१०)

पहले हम एकांगी रोगोंका थोड़ा सा हाल लिख चुके हैं, वह पाठकोंको याद होगा। ये एकांगी रोग (One sided) मूल रोगके अधिकांश रोग-लक्षणोंको छिपाये रहते हैं और केवल एक या दो लक्षणोंको प्रकट करते हैं। इन एकांगी रोगोंके इस प्रकार एक या दो लक्षणोंके प्रकट करनेके कारण मूल रोगको चिकित्सा द्वारा दूर करना बड़ा ही कठिन काम हो जाता है। ऐसे जितने एकांगी रोग हैं, उनमेंसे प्रायः सभी सोरा-जनित दोषोंसे उत्पन्न होते हैं। मानसिक पीड़ा भी उन्हीं एकांगी रोगोंमेंसे एक है। परन्तु मानसिक रोगोंको साधारण रोगोंसे पृथक् नहीं किया जा सकता है। क्योंकि प्रायः समस्त शारीरिक रोगोंके लक्षणोंके साथ मानसिक लक्षण भी मिले हुए रहते हैं। चाहे कोई भी रोग क्यों न हो, उसकी परीक्षा करते समय अन्यान्य लक्षणोंके साथ मानसिक लक्षणोंको भी जान लेनेकी ज़रूरत पड़ती है। क्योंकि होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके द्वारा लाभ उठानेके लिये सब प्रकारके लक्षणोंके साथ मानसिक लक्षणोंको भी मिलाकर सम्पूर्ण रोगका चित्र खींचना चाहिये। और इस प्रकार सम्पूर्ण रोग-चित्रके सदृश-चित्र तैयार करने-

वाली ओषधीका ही प्रयोग करना चाहिये। तभी यथार्थ लाभ हो सकता है।

(२१२)

ये मानसिक लक्षण सदृश ओषधी-निर्वाचनके काममें विशिष्ट लक्षण-स्वरूप होकर प्रधान रूपसे सहायता करते हैं। अच्छी तरह परीक्षा लेनेवाले चिकित्सकोंके आगे ये मानसिक लक्षण रोगीके अन्यान्य रोग-लक्षणोंसे कुछ कम मूल्यवान नहीं होते हैं।

(२१२)

संसारकी समस्त ओषधियोंके निर्माण-कर्त्ता, परमेश्वरने समस्त ओषधियोंको मानसिक परिवर्त्तन (या ओषधी-जनित लक्षण) उत्पन्न करनेकी शक्ति प्रदान की है। अतएव मानसिक लक्षण सब रोगोंके एक प्रकारसे प्रधान लक्षण हैं। ऐसी कोई भी ओषधी नहीं दिखाई देती, जो मानसिक और स्वाभाविक लक्षणोंमें बहुत ही स्पष्ट रूपसे परिवर्त्तन उपस्थित न करती हो। प्रत्येक ओषधीमें भिन्न-भिन्न प्रकारके मानसिक लक्षण उत्पन्न करनेकी शक्ति देखी जाती है।

(२१३)

किसी भी रोगीकी चिकित्सा करते समय, चाहे वह किसी तरुण रोगसे ही ग्रसित क्यों न हो—अगर हमलोग और सब रोग-लक्षणोंका ख़याल रखकर केवल मानसिक लक्षणोंकी ओर

ध्यान न दें और चाहें कि रोगीके समस्त रोग-लक्षणोंके सद्वश ओषधीका निर्वाचन कर लें, अथवा यों समझिये, कि यदि हम लोग कोई ऐसी ओषधी निर्वाचन करना चाहें, जो और सब रोग-लक्षणोंके सद्वश हो, पर उससे कोई मानसिक लक्षण परिवर्त्तित न हो, तो ऐसी ओषधीका मिलना बिल्कुल ही असम्भव है और न होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार ऐसी ओषधीका हमलोग प्रयोग ही कर सकते हैं।

(२१४)

मानसिक रोगोंकी चिकित्साके विषयमें मुझे जो कुछ कहना है, वह बहुत ही कम है ; क्योंकि मानसिक रोगोंकी चिकित्सा भी शारीरिक अन्यान्य रोगोंकी चिकित्साके सद्वश ही है। अर्थात् उन रोगोंकी चिकित्सा भी उन्हीं ओषधियोंके द्वारा करनी होगी, जो रोगीके सम्पूर्ण रोग-लक्षणोंके सद्वश लक्षण उत्पन्न कर सकती हों। इस नियमके सिवा दूसरे किसी नियम द्वारा रोग दूर हो ही नहीं सकता है।

(२१५)

मानसिक या चित्तको उत्तेजित करनेवाली समस्त व्याधियाँ शारीरिक रोगके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। वास्तवमें शारीरिक और मानसिक रोगोंमें कोई अन्तर नहीं है। बात यह है, कभी-कभी किसी साधारण रोगके शारीरिक लक्षण जब लुप्त होने लगते हैं, तब उसी समय मानसिक रोग-लक्षण बढ़ते जाते हैं।

इस प्रकार कुछ काल बाद के रोग-लक्षण जब रोगीके केवल मानसिक रोग-लक्षणोंके रूपमें आ जाते हैं और एकांगी रूप धारण कर लेते हैं, इस अवस्थामें स्थूल दृष्टिसे देखनेपर मालूम होता है, मानो वह रोग केवल मनसे ही सम्बन्ध रखता है और किसी अङ्गमें उसे स्थान ही नहीं मिला है।

(२१६)

कभी-कभी ऐसा देखा जाता है, कि कुछ मारात्मक या सांघातिक रोग (जैसे :—फेफड़ेमें पीबका पड़ जाना, या किसी ऐसे ही भीतरी मुख्य अंगका ख़राब होना या प्रसवसे होनेवाले रोग) धीरे-धीरे लुप्त होते जाते हैं और उनके बदले मानसिक लक्षण बढ़ते जाते हैं। अकसर ये मानसिक रोग-लक्षण बढ़ते बढ़ते मतिभ्रम, उदासी और पागलपनके रूपमें आ उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें जैसे-ही-जैसे मानसिक रोग-लक्षणोंकी वृद्धि होती है, वैसे-ही वैसे शारीरिक रोग-लक्षणोंका ह्रास होता जाता है। कभी-कभी तो यहाँतक देखा जाता है, कि पहले शरीरके जिन अङ्गोंपर घाव हो गये थे, वे बिल्कुल मिट जाते हैं और कभी-कभी वे इतना सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं, कि बहुतही विचारशील और गम्भीर स्वभावके चिकित्सक ही केवल उसको देख सकते हैं। इस प्रकार वह रोग एकांगी और स्थानीय रोगका रूप धारण कर लेता है। उस समय पहलेवाले दुर्बल मानसिक लक्षणही प्रधान हो जाते हैं, और वे ही शारीरिक रोग-लक्षणोंका स्थान अधिकृतकर लेते हैं। इस प्रकार मानसिक

लक्षण शारीरिक लक्षणोंको दबा देते हैं। अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहिये, कि स्थूल शरीरके रोग लक्षणही परिवर्त्तित होकर सूक्ष्म मानसिक यन्त्रोंपर दूसरे रूपमें प्रकट होते हैं। एनाटोमी (Anatomy) के पारदर्शी (शरीर-शास्त्र-विद्) अपनी तेज़ छुरीकी सहायतासे इन मानसिक सूक्ष्म यन्त्रोंतक कभी पहुँचही नहीं सकते हैं।

(२१७)

इन सब बीमारियोंके शारीरिक लक्षणोंके साथ-साथ जो मानसिक लक्षण स्पष्ट रीतिसे प्रकट होते हैं अथवा जो विशेषता पूर्ण होते हैं, उनकी ख़ूब अच्छी तरहसे जाँच कर लेनी चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण रोगको दूर करनेके लिये ऐसी औषधीका निर्वाचन करना है, जिसके लक्षणोंके साथ रोगके लक्षणोंका सादृश्य हो। और यह लक्षण-सादृश्य केवल शारीरिक रोग-लक्षणोंके विषयमेंही नहीं होना चाहिये, बल्कि मानसिक लक्षणोंके विषयमें भी विशेष रूपसे होना चाहिये।

(२१८)

इन लक्षणोंको जाननेके समय सबसे पहले रोगीकी उस अवस्थाके रोग-लक्षणोंको जानना चाहिये, जो पहले शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंपर थे और जो अब केवल मानसिक लक्षण होकर एकांगी रोगके रूपमें प्रकट हुए हैं। ये सब लक्षण रोगीके साथ रहनेवालोंसे पूछनेपर मालूम हो सकते हैं।

(२१९)

मानसिक लक्षणोंके प्रबलतर हो उठनेके पहले जो सब शारीरिक रोग-लक्षण मौजूद थे, उनके साथ वर्त्तमान दुर्बल शारीरिक लक्षणोंके साथ अगर सूक्ष्म रूपसे देखकर तुलना की जाये, तो मालूम होगा, कि तबके और अबके लक्षणोंमें बहुत कुछ सादृश्य है। हाँ, यह ज़रूर है, कि वर्त्तमान लक्षण पूर्व लक्षणोंकी अपेक्षा बहुतही अस्पष्ट और दुर्बल हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है, कि इसी समयमें जब मानसिक लक्षण कुछ कालके लिये दब जाते हैं और जबतक वे दबे रहते हैं, तबतक शारीरिक लक्षण स्पष्ट रूपसे प्रकट हो आते हैं।

(२२०)

चिकित्सक स्वयं रोगीमें जो सब मानसिक रोग-लक्षण देखते हैं, और रोगीको देखने-भालनेवाले लोग जो सब मानसिक विपर्य्यय देखते हैं, उन सब लक्षणोंके साथ उपर्युक्त शारीरिक रोग-लक्षणोंको जोड़ देनेसे रोगका सम्पूर्ण चित्र तैयार हो जाता है। इसके बाद उस रोगको दूर करनेके लिये,—ख़ासकर उस हालतमें जब कि मानसिक विपर्य्यय दीर्घकाल स्थायी (देरीतक ठहरनेवाला) हो, तो—सोरा-नाशक ओषधी सदृश-विधानके अनुसार दी जानी चाहिये ; पर ऐसी ओषधी दी जानी चाहिये, जिसके लक्षण मूल-रोगके विशेषतापूर्ण लक्षणोंके साथ सादृश्य रखते हों। यह सादृश्य-निर्णय करते समय मानसिक लक्षणों-पर विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिये।

(२२१)

अगर शराब पी लेनेसे मानसिक रोग उत्पन्न हो गया हो—यद्यपि आभ्यन्तरिक सोरा-जनित रोगके जाग्रत हुए बिना ऐसा होना असम्भव है, तथापि अगर ऐसी मानसिक व्याधि सहसा हो जाये—तो ऐसी अवस्थामें आरम्भमें ही सोरा-नाशक ओषधीका प्रयोग न कर तरुण क्रियाशील ओषधी * ऊँचे डायल्यूशनमें तथा अल्पमात्रामें देनी चाहिये। ऐसा करनेसे प्रज्ज्वलित सोरा फिर बहुत जल्द छिप जाता है।

(२२२)

परन्तु तरुण क्रियाशील ओषधियोंका प्रयोग करनेके बादही सोराके फिर चुप होकर बैठ जानेसे यह न समझ लेना चाहिये, कि जो मानसिक व्याधि हुई थी, वह स्थायी रूपसे दूर हो गयी। भीतरका सोरा किसी भी समय फिर जाग उठ सकता है और मानसिक व्याधिको और भी भयंकर आकारमें प्रकटकर सकता है। इस लिये समय न गवाँकर फ़ौरन सोरा-नाशक ओषधीका प्रयोग करना उचित है। इस प्रकारकी चिकित्सा करनेसे और रोगीके खान-पान आदि नियमित रूपसे करनेसे फिर उस मानसिक रोगके उत्पन्न होनेकी साम्भावना नहीं रहती है।

---

* जैसे—एकोनाइट, बेलेडोना, स्ट्रामोनियम, हायसाइमस, मरकरीइत्यादि।

(२२३)

और अगर तरुण क्रियाशील ओषधी देनेके बाद जब सोरा दब जाता है, तब सोरा-नाशक ओषधी न दी जाये, तो मामूली उत्तेजक कारणसे ही पहलेवाली मानसिक व्याधि इतनी प्रबल हो उठती है, कि वह रोगीको बहुत समयतक सताती रहती है। साथही सोरा-जनित और-और कितनेही रोग भी एकत्र होकर रोगीको इस तरह धर दबाते हैं, कि फिर सोरा-नाशक ओषधियोंके प्रयोगसे भी उस रोगको दूर करना कठिन हो जाता है।

(२२४)

यदि मानसिक रोग सम्पूर्ण रूपसे विकसित न हुआ हो और यदि ऐसा सन्देह हो, कि वह रोग शारीरिक व्याधिके कारण उत्पन्न न होकर कुशिक्षा, बुरी आदतों, नैतिक अधःपात, लापरवाही, भ्रान्ति-मूलक भावनाओं और अज्ञानताके कारणसे उत्पन्न हुआ हो, तो उसका निश्चय करनेके लिये इस पद्धतिसे काम लेना चाहिये। यदि पिछले कारणोंमेंसे किसीसे भी हुआ हो, तो रोगीके साथ सद्व्यवहार करने, सान्त्वना देने, सदुपदेश देने तथा भ्रान्ति-निवारक युक्तियोंसे समझानेसे रोगी बहुत कुछ शान्ति पाता है; परन्तु यदि वह किसी शारीरिक रोगके कारण हुआ हो, तो वह इन उपायोंका अवलम्बन करनेसे और भी बढ़ता है तथा रोगी और भी चिढ़ चिढ़ा, उदास और अशान्त हो जाता है।

(२२५)

हाँ, कुछ मानसिक रोग ऐसे अवश्य हैं, जो उत्पन्न तो छोटेसे शारीरिक रोगके कारणही होते हैं, पर रोगीकी दीर्घकाल-व्यापी मानसिक दुश्चिन्ता, घबराहट, डर और दहशत तथा ग़लतियोंसे बढ़कर भयंकर रूप धारणकर लेते हैं। और अब उसी मानसिक रोगके कारण स्वास्थ्य और भी ख़राब होता जाता है।

(२२६)

इस प्रकार मानसिक रोग शरीरपर अपने लक्षणोंको प्रकट करनेके पहले मनके ऊपर अपना अधिकार कर लेता है और जबतक वह मनपर अपना पूरा अधिकार जमाये रहता है, तबतक शरीरपर उसका कोई लक्षण प्रकट नहीं होता है। ऐसी अवस्थामें चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगीके साथ दोस्तका सा बर्ताव करें, उसे अच्छे-अच्छे उपदेश दें, आश्वासन-वचन कहें, बल्कि उसकी सब तरहसे सहायता करनेकी प्रतिज्ञा करलें। इस प्रकारके बर्तावसे भी रोगीका रोग बहुत कुछ कम हो सकता है। परिमित और नियमित आहार-विहार आदिसे शारीरिक अवस्था भी अच्छी रहती है।

(२२७)

पर उनका मूल कारण सोरा है। जबतक सोरा पूर्ण रूपसे विकसित नहीं होता है, तबतक रोगको शान्त रखना किसी प्रकार असम्भव है। पर इस हालतमें भी शीघ्रही सोरा-

नाशक ओशधीका प्रयोग करना उचित है। क्योंकि अगर सोरा नाशक ओषधी द्वारा रोग मूलसे दूर न किया जायेगा तो, किसी भी समय रोग फिर फूट निकल सकता है।

(२२८).

शारीरिक रोगोंसे उत्पन्न होनेवाले सभी मानसिक रोग केवल सोरा-नाशक ओषधियोंसे ही जड़से दूर हो सकते हैं। परन्तु ओषधियोंकी व्यवस्था करनेके साथ-ही-साथ रोगीके रहनेकी जगह और तैार-तरीकोंमें जो दोष हों, उन्हें भी दूर करते जाना चाहिये। साथही रोगीके साथ जो बर्ताव किया जाये, उसपर भी चिकित्सकको विशेष ध्यान रखना चाहिये। अगर किसी उन्माद-रोग-ग्रस्त रोगीमें क्रोधकी मात्रा बहुत अधिक हो, तो उसके साथ निडर परन्तु धीरभावसे बर्ताव करना चाहिये। अगर रोगीका स्वभाव बहुतही चिढ़-चिढ़ा हो और वह रोता-पीटता हो, तो उसके साथ मौनताका व्यवहार करना चाहिये। रोगी जब अपने आप बक-बक करे, तो उस वक्त चुपचाप रहकर धीरतापूर्वक उसकी बातोंको सुनना चाहिये। रोगी जब आप-ही-आप तबीयत ऊब जाने-वाली बातें बकता हो, या गालियाँ देता हो, तो उसकी गालि-योंका कुछ भी ख़याल नहीं करना चाहिये। पागल रोगी, जिसमें घरकी कोई क़ीमती चीज़ वगैरह न तोड़े, इसके लिये हमेशः खयाल तो रखनाही चाहिये; पर साथही उससे अधिक इस बातपर ख़याल रखना चाहिये, कि रोगीको कोई डाँट फट-

कार न बतायी जाये और न उसे कोई शारीरिक सज़ाही दी जाये। रोगीको कभी ज़बर्दस्ती किसी कामके लिये बाध्य नहीं करना चाहिये। ओषधी पिलानेके लिये शायद ज़बर्दस्ती करनेकी आवश्यकता पड़ भी सकती थी, पर होमियोपैथिक ओषधी स्वादहीन होनेके कारण वह पानीके बदलेमें भी पिला दी जा सकती है और इस लिये दवा पिलानेमें भी ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं करनी पड़ती है।

(२२६)

ऐसे पागल रोगियोंकी चिकित्सा करते समय किसी तरह तर्क-वितर्क करना या ज़बर्दस्ती उसकी ग़लतियोंको उसे समझा देनेकी कोशिश करना, रोगीको गालियाँ देना या मारने-पीटनेका डर दिखाना बिल्कुल अनावश्यक ही नहीं है; बल्कि रोगीके लिये ऐसा करनेसे नुक़सान भी होता है। हृदय-रोगके कारण होनेवाले उन्मादके रोगीको किसीकी डाँट-डपटकी बातें सुनते ही उसका रोग और भी बढ़ जाता है। चिकित्सकको सदा ऐसा भाव दिखाना चाहिये, जिससे रोगीको यह मालूम हो, कि चिकित्सकको उसकी बुद्धि-भ्रान्तिका ज़रा भी सन्देह नहीं है।

जिन बातोंसे या जिन कामोंसे रोगीकी तबीयत घबराती हो, वैसी बातें या वैसे काम उसके पास न होने चाहियें। ऐसे रोगियोंके मनमें जो दुःख, शोक, चिन्ता आदिकी काली घटा घिरी रहती है, उसे किसी प्रकारके आनन्द-आमोदसे हटाया नहीं जा सकता है। हँसी-मज़ाक, आमोद-प्रमोद

या उपदेश आदिकी बातोंसे ऐसे रोगियोंकी आत्माको शान्ति कदापि नहीं मिल सकती है। इस अवस्थामें केवल रोगको ओषधीके द्वाराही दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। केवल शारीरिक स्वास्थ्य लौटा लानेसे ही रोगीकी सब तरहकी मानसिक पीड़ाएं दूर हो जाती हैं।

(२३०)

कितने ही प्रकारकी मानसिक या चित्तोत्तेजक व्याधियां देखनेमें आती हैं। उन सब बीमारियोंके समस्त लक्षणोंसे जो रोग-चित्र तैयार होते हैं, उसके सब लक्षणोंके सदृश लक्षणोंवाली सोरा-नाशक ओषधी निर्वाचित की जा सकती है। ऐसी ओषधियोंका प्रयोग करनेसे, जो सब शारीरिक और मानसिक रोग-लक्षणोंके सदृश लक्षण-विशिष्ट हों, बहुत जल्द रोग दूर हो जाता है। बहुत अधिक मात्रामें असदृश ओषधियोंके सेवनसे इस प्रकारका रोग कदापि दूर नहीं हो सकता है। रोगीका रोग-चित्र बहुत सावधानीसे तैयार करने और उसके समस्त शारीरिक और मानसिक लक्षणोंके शदृश ओषधी निर्वाचित कर लेनेपर रोगको भगानेमें देरी नहीं लगती। मेरा विश्वास है और अपने उसी विश्वासपर भरोसा रखकर मैं कह सकता हूं, कि होमियोपैथिक चिकित्सा-विधानने शारीरिक और मानसिक व्याधियोंको दूर करनेमें जितना श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है, उतना ऊंचा स्थान और किसी भी चिकित्सा-प्रणालीको प्राप्त नहीं हो सका है।

(२३१)

इसके बाद हम उन व्याधियोंके विषयमें अपने विचार प्रकट करेंगे, जो रोगीके शरीरसे कुछ समयके लिये हट या दब जाते हैं और फिर कुछ समय बाद आक्रमण करते हैं। इन्हें सविराम रोग कहते हैं। ये रोग निश्चित और निर्दिष्ट समयपर रोगीपर आक्रमण किया करते हैं। सविराम ज्वर (Intermittant fever) भी इसी श्रेणीकी व्याधियोंके अन्दर है। ज्वरके अतिरिक्त जो व्याधियाँ इस प्रकार निर्दिष्ट समयपर पुनः पुनः आक्रमण करती हैं, वे भी इसी श्रेणीकी होती हैं। इस प्रकारकी सविराम व्याधियोंमें एक प्रकारकी व्याधि होती है, जो एक प्रकारके लक्षणके समाप्त होनेपर दूसरे प्रकारके लक्षण प्रकट करती है।

(२३२)

इस प्रकार जो लक्षण एकके बाद दूसरे प्रकट होते हैं, वे बहुत तरहके होते हैं। इनमेंसे प्रायः सभी पुराने रोगोंके अन्तर्गत हैं और सभी सोरा-जनित दोषोंसे उत्पन्न होते हैं। पर कभी-कभी इनके साथ गरमीके भी लक्षण दिखाई देते हैं। अगर सोरा-जनित दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो, तो सोरा-नाशक ओषधीका सेवन करना चाहिये। और अगर उसके साथ गरमीका भी रोग-बीज मिला हो, तो सोरा-नाशक ओषधीके बाद गरमी-नाशक ओषधीका प्रयोग करना चाहिये।

(२३३)

वास्तवमें सविराम व्याधियाँ वे ही हैं, जिनके कुछ लक्षण

निश्चित और निर्दिष्ट समयपर आप-ही-आप प्रकट होते हैं। और जब वे सब लक्षण छिप जाते हैं, तब रोगी रोग-मुक्त सा हो जाता है। पर वे सचमुच दूर नहीं होते, बल्कि रोगीके शरीरमें छिपे रहते हैं। इस प्रकारकी सविराम व्याधियोंके लक्षण जैसे अन्यान्य रोगोंमें प्रकट होते हैं, वैसे ही सविराम ज्वरमें भी प्रकट हुआ करते हैं।

(२३४)

जिन सविराम व्याधियोंमें ज्वर स्पष्ट रूपसे मालूम नहीं होता, वे सदा एकही समय एकही आदमीमें दिखाई देते हैं। ये व्याधियाँ कभी संक्रामक रूपसे एकही समय बहुत आदमियों-पर आक्रमण नहीं करती हैं। ये प्रायः सर्वदा पुरानी व्याधि-योंकी श्रेणीकी होती और ख़ासकर इनकी उत्पत्ति सोरा-जनित दोषोंसे हुआ करती है और कभी-कभी इनके साथ गरमीके रोग-बीजकी भी मिलावट होती है। यदि यह बात हो, तो चिकित्सा भी उसीके अनुरूप होनी चाहिये। तो भी कभी-कभी ऐसी बीमारियोंमें मध्यवर्त्ती * ओषधीके हिसाबसे सिन्-कोना वार्क (चायना) देनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसके देनेसे बीमारियोंका सविराम भावसे होना दूर हो जाता है। †

* मध्यवर्त्ती ओषधी उसे कहते हैं, जिसका प्रयोग एकके जारी रहनेपर भी बीचमें ही किया जाये।

† ज्वरका सविराम भाव दूर हो जानेपर उसे दूसरी ओष-धीके द्वारा दूर करना सहज हो जाता है।

(२३५).

जो सब सविराम ज्वर संक्रामक रूपसे अकसर फैलते दिखाई देते हैं, (तराईयोंमें होनेवाले सांघातिक सविराम ज्वरके अतिरिक्त) उनमेंसे प्रायः सभी दो प्रकारके रोग-लक्षण एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद फिर पहलेही वालोंको प्रकट करते हैं। (कभी गर्मी मालूम होती है तो कभी जाड़ा मालूम होता है) इसी प्रकार एकके बाद दूसरा लक्षण प्रकट होता रहता है। कभी-कभी इन सविराम ज्वरोंमें तीन प्रकारके लक्षण भी दिखाई देते हैं, जिनमें एकके बाद दूसरा और दूसरेके बाद तीसरा प्रकट हुआ करता है (पहले जाड़ा, फिर गर्मी मालूम होती है, इसके बाद पसीना फूट निकलता है) ऐसे मौके पर सोरा-नाशक ओषधी न देकर साधारण ओषधियोंमेंसे ही ऐसी ओषधी निर्वाचित करके देनी चाहिये, जो ठीक वैसेही दो या तीन पर्यायशील लक्षण उत्पन्न करनेकी शक्ति रखती हो। इस प्रकारके सविराम ज्वरके जो विशेषतापूर्ण लक्षण हैं, उनके साथ जिस ओषधीके लक्षणोंका सादृश्य हो, वही ओषधी होमियोपैथिक चिकित्सा-विधानके अनुसार दी जानी चाहिये। खासकर ज्वरका अन्त होनपर ज्वर-हीन अवस्थामें जो सब रोग-लक्षण दिखाई देते हों, उनके साथ इन ओषधियोंका विशेष रूपसे सादृश्य होना चाहिये ; क्योंकि इस प्रकारके सविराम ज्वरोंकी चिकित्सामें ज्वर-हीन अवस्थाके रोग-लक्षण ही बहुत अधिक सहायता किया करते हैं।

(२३६)

इन सविराम व्याधियोंमें, जिस समय उनके कुछ लक्षण दब जाते हैं और जिस समय रोगी कुछ आराम पाता है, ठीक उसी समय ओषधीका प्रयोग करना अत्युपयोगी होता है। ठीक उसी समय ओषधीका प्रयोग करनेसे रोगीको सदृश-विधान-जनित रोगसे (Homœopathic aggravation) कष्ट पाना नहीं पड़ता है। पूर्ण स्वस्थावस्था लौटा लानेके लिये जिन क्रियाओंकी आवश्यकता होती है, ओषधी उन क्रियाओंको पूर्ण करके रोगीकी स्वस्थावस्था लौटा लाती है। परन्तु यदि सविराम व्याधियोंके विरामकी अवस्थाके अन्तमें या व्याधियोंके ज़ोरोंसे फूट निकलनेके कुछ पहले, ओषधी दी जाये, तो उसका परिणाम बड़ाही भयंकर होता है। रोगीकी यदि मृत्यु न हुई, तो कमसे कम पीड़ा अवश्यही बेहद बढ़ जाती है; क्योंकि ओषधी-जनित रोग-वृद्धि मूल रोगके लक्षणोंके साथ मिलकर बड़ाही प्रबल रूप धारण कर लेती है। * परन्तु यदि मूल रोगका वेग कम होनेपर ओषधी दी जाती है, तो ओषधी, जीवनी-शक्तिके बहुत कुछ स्वस्थ रहनेके कारण, अपनी क्रिया यथोचित रीतिसे कर सकती है और इस प्रकार रोगीको रोग-मुक्त करनेमें समर्थ होती है।

---

* कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है, कि सविराम ज्वरके विराम-समयके अन्तमें ओपियम (Opium) आदि देनेसे रोगीकी मृत्यु हो गयी है।

(२३७).

लेकिन अगर विरामका समय बहुतही कम हो, (जैसा कि अकसर देखनेमें आता है) या रोगका वेग कम हो जानेपर उसके बाद कई और कष्ट-दायक लक्षण प्रकट हो आयें, तो ऐसी अवस्थामें पसीना निकलना बन्द हो जानेपर या कष्ट-दायक लक्षणोंके क्षीण हो जानेपर ही ओषधीका प्रयोग करना चाहिये।

(२३८)

यदि किसी सुनिर्वाचित ओषधीकी एक खुराक देनेके बाद रोगके कई आक्रमण रुक जायें और रोग दूर हो जाये परन्तु फिर भी वही रोग आजाये, और रोगके सब लक्षण इस बार भी पहलेकेही जैसे हों, तो फिर उसी ओषधीका प्रयोग करना चाहिये। ओषधीके द्वारा जब एक बार स्वस्थावस्था लौट आती है, तब केवल तराई आदि सीलवाले स्थानोंमें ही रोगके लक्षणोंके सुप्त हो जानेपर भी रोग शरीरके भीतर छिपकर रह सकता है। ऐसी अवस्थामें उत्तेजक कारणोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। (सीलवाली जगह, सविराम ज्वरके प्रधान उत्तेजक कारणोंमेंसे एक है) इसलिये ऐसी अवस्थामें रोगीको तराईवाले स्थानसे हटा देना चाहिये।

(२३९)

प्रायः सभी ओषधियोंमें कोई-न-कोई विशेषता पूर्ण ज्वर उत्पन्न करनेकी शक्ति हुआ करती है। यहांतक, कि सविराम

ज्वरमें जिस प्रकार जाड़ा, कँमकँपी जलन, पसीना और विराम होते देखा जाता है, ओषधी भी ठीक उसी प्रकारके पर्यायशील लक्षण उत्पन्न कर सकती है। इसलिये जितने प्रकारके सविराम ज्वर हैं, उन सबके लिये सदृश विधानके अनुसार अमोघ ओषधियोंकी संख्या कम नहीं है। अभीतक जितनी सुपरीक्षित ओषधियोंका पता लगा है, हम दावेके साथ कह सकते हैं, कि वे ही ओषधियाँ अबतक जितने प्रकारके सविराम ज्वर देखे जाते हैं, उनकी चिकित्साके लिये यथेष्ट हैं।

(२४०)

जब सविराम ज्वर संक्रामक रूपसे फैला नहीं रहता है और जगहकी तरी या सीलनके कारण वह परिपुष्ट भी नहीं होता है, तब एकही ओषधी द्वारा वह आसानीसे दूर किया जा सकता है। पर यदि ऐसी अवस्थामें यह देखा जाये, कि सुनिर्वाचित ओषधी ज्वरको सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं कर सकती है, तो समझना चाहिये, कि वह सोरा-जनित दोषोंसे परिपुष्ट होता है। और इस लिये उस रोगीकी चिकित्सा सोरा-नाशक ओषधीके द्वारा करनी चाहिये।

(२४१)

परन्तु जिस समय कहींपर सविराम ज्वर व्यापक रूपसे फैला हुआ हो और उसके लक्षण साधारण हों, और जिस रोगीकी चिकित्सा करनी हो, वह अगर पहिलेसे किसी पुराने

रोगसे ग्रस्त न हो, तो उस रोगीके समस्त रोग-लक्षणोंके सदृश लक्षण उत्पन्न करनेवाली ओषधीही उस संक्रामक सविराम ज्वरके लिये अमोघ ओषधी है। ऐसी अवस्थामें जिन रोगियों-के शरीरमें पहलेसे सोरा-जनित दोष मौजूद हों, उन्हें छोड़ और सब रोगियोंको उसी एक ओषधीसे रोग-मुक्त किया जा सकता है।

(२४२)

लेकिन अगर इस प्रकारके संक्रामक और सविराम ज्वरके पहले आक्रमणकी चोट दूर न हो गयी हो, या ऐलोपैथिक चिकित्साके द्वारा रोगी बहुत ही दुर्बल कर दिया गया हो, तो भीतरी सोता हुआ, सोरा-जनित दोष जागकर और प्राचीन सविराम ज्वरका स्वरूप धारणकर संक्रामक सविराम ज्वरके लक्षण प्रकटकर रोगीको कष्ट पहुँचाता है। ऐसी अवस्थामें उन ओषधियोंसे कुछ भी लाभ नहीं होता, जो केवल ज्वरके लक्षणोंके सदृश लक्षण उत्पन्न करनेकी शक्ति रखती हैं, और जिनसे पहले लाभ भी हो सकता था। ऐसे मौकेपर, सलफर हिपर-सलफर आदि सोरा-नाशक ओषधियोंका बहुतही कम बार और अल्प मात्रामें प्रयोग करना चाहिये और ऐसीही ओष-धियोंसे सोरा-जनित दोषोंसे होनेवाले सविराम ज्वरके रोगि-योंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

(२४३)

जहांपर केवल एकही आदमीको सांघातिक रूपका सवि-

राम ज्वर दिखाई दे, और वह सर्द जगहके कारण परिपुष्ट न होता हो, तो वहांपर ऐसा सन्देह होता है कि यह सोरा-जनित दोषोंसे उत्पन्न हुआ है। परन्तु ऐसी अवस्थामें भी पहले वही औषधी देनी चाहिये, जो सोरा-नाशक नहीं और जिसके लक्षण उस ज्वरके सदृश हों। लेकिन अगर उसी औषधीका प्रयोग करते रहनेपर भी वह ज्वर जारी रहे, तो निस्संकोच होकर यह जान लेना चाहिये, कि यह ज्वर अवश्य ही सोरा-जनित दोषोंसे उत्पन्न हुआ है और उसीकी सहायतासे यह परिपुष्ट भी हो रहा है। इसलिये ऐसे रोगीकी चिकित्सा सोरा-नाशक औषधीके द्वारा करनी चाहिये।

(२४४)

तराइयोंमें या अधिक सर्दी पड़नेवाली जगहोंमें होनेवाला सविराम ज्वर, जब बढ़ जानेके कारण व्यापक रूप धारण करता है, तब ऐलोपैथिक चिकित्सक उससे आक्रान्त होनेवाले रोगियोंकी चिकित्सा करते समय बड़ेही हैरान हो जाते हैं। उनकी अक़ल काम नहीं करती। साथ ही यह भी देखा गया है, कि जो मनुष्य अपनी युवावस्थामें अपने स्वास्थके प्रति विशेष ध्यान रखनेवाले होते हैं, जो आहार-बिहारकी मात्रा सदासे परिमित रखते आये हैं, और जिन्होंने इन्द्रियोंके वशवर्ती होकर उनपर अत्याचार नहीं किया है, वे यदि सीलके स्थानमें आकर बसें तो उनपर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है। सम्भव है कि, ऐसे स्थानमें आकर बसते ही शुरू शुरूमें सविराम ज्वर हो

जाये, तो उन्हें ऊंचे डायल्यूशनका चायना एक या दो खुराक दिया जाये और आहार-विहारके प्रति सावधानता रक्खीजाये तो वे बहुत शीघ्र रोग-मुक्त हो जायेंगे। परन्तु ऐसी ओषधीके सेवनसे तथा नियमित, आहार-विहार करनेपर भी अगर इस प्रकारका सविराम ज्वर दूर नहीं हो, तो समझना चाहिये, कि इसका मूल कारण सोरा-जनित दोष है और वह ज्वर सोराके ही कारण परिपुष्ट हो रहा है। यह हाल देखकर सोरा-नाशक ओषधीका सेवन कराना चाहिये। हाँ, कभी कभी ऐसा भी होता है, कि सोरा-नाशक ओषधी न देनेपर भी अगर रोगी सूखी जगहमें या पहाड़ोंपर रखा जाये, तो वह सविरामज्वर रोगीके भीतरही छिप जाता है और सुप्त अवस्था प्राप्त करता है। पर जब तक सोरा-नाशक ओषधीका प्रयोग नहीं किया जायेगा, तबतक वह जड़से दूर नहीं हो सकता।

(२४५)

इस प्रकार भिन्न-भिन्न रोगोंके विशेष-विशेष लक्षणोंको देखकर तथा उनकी होमियोपैथिक चिकित्साके विषयमें विचार-कर लेनेके बाद अब हमलोगोंको इस बातपर विचार करना चाहिये कि किस रोगके लिये कौनसी ओषधी अमोघ है, किस रोगीको क्या चीज़ खानेके लिये दीजानी चाहिये और किस चीज़का परहेज़ करना चाहिये तथा चिकित्सा करते समय उस ओषधीका प्रयोग किस प्रकार करना चाहिये और उसके अनुपान क्या हैं।

किसी भी पुराने या नये रोगके रोगीके रोग-लक्षण-यदि किसी ओषधीके प्रयोगसे शीघ्रतापूर्वक आराम होनेकी ओर अग्रसर होते हों, तो जबतक रोग घटता रहे, तबतक दूसरी ओषधीका प्रयोग करना उचित नहीं है ; क्योंकि वह ओषधी अपनी क्रियाकी पूर्त्ति करती हुई रोग दूर करती जारही है। इसलिये ऐसे समयमें दूसरी ओषधी देनेसे पहली ओषधीकी क्रियामें बाधा पड़ती है और रोगका दूर होना बन्द हो जाता है।

(२४६)

इसके अतिरिक्त सदृश् विधानके अनुसार जो ओषधी सुनिर्वाचित समझकर दीजाती है, उसकी एकमात्र खुराक और सो भी बहुत ही अल्प मात्रामें देनेपर भी यदि उसकी क्रियामें कोई बाधा या रुकावट नहीं पड़े, तो वह धीरे-धीरे रोगको दूर करती जाती है और ओषधीके * अनुसार चालीस-पचास दिनोंतक तथा कभी-कभी सौ-सौ दिनोंतक अपनी क्रिया जारी रखती है और रोगको दबाती जाती है। पर यह ज़रूरी है, कि इतने अधिक दिनोंतक किसी ओषधीको क्रिया जारी

* जैसे बीमारियोंका स्वभाव है, कि कोई बहुत दिनोंतक और कोई थोड़ेही दिनोंतक ठहरती है, उसीप्रकार ओषधियोंका भी स्वभाव होता है। उनमेंसे भी किसीका असर बहुत दिनोंतक और किसीका थोड़ेही दिनोंतक रहता है। ऐकोनाइट (Aconite) का असर बहुत कम स्थायी होता है, इसलिये यह कम समयतक ठहरनेवाली तरुण व्याधियोंके लिये अमोघ

रहते बहुत कम देखनेमें आता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक को यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये, कि रोगी और चिकित्सक दोनोंकी भलाई इसमें है, कि चिकित्सामें इतने अधिक दिन न लगें; बल्कि इसके आधे, चौथाई या और भी कम दिनोंमें रोग दूर हो जाये। अनुभव द्वारा यह जाना गया है, कि इसके लिये तीन उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये। पहला यह है, कि जिस रोगके लिये जो ओषधी निर्वाचित हो, वह रोगके समस्त लक्षणोंके पूर्ण सदृश रोग उत्पन्न करनेकी शक्ति रखती हो। दूसरा यह, कि उस सुनिर्वाचित ओषधीका भी प्रयोग इतनी कम मात्रामें किया जाये जिससे जीवनीशक्तिमें अधिक उत्तेजना भी न पैदा हो और साथ ही उससे रोग आसानीसे दूर होता जाये। तीसरा यह है, कि वह ओषधी सदृश और अल्प होनेपर भी उसकी मात्राको यथा समय दुहरा लेना चाहिये दुहरानेका ज्ञान, केवल अनुभवसे ही प्राप्त हो सकता है।

(२४७)

उपर्युक्त तीन बातोंपर ध्यान रखकर रोगको शीघ्रतापूर्वक दूर करनेके लिये होमियोपैथिक ओषधियोंकी खुराकें अवस्थानुसार चौदह, बारह, दस यहांतक कि सात दिनोंके अन्तरपर

हो सकती है। सलफर (Sulphur) का असर देरतक ठहरता है, इसलिये यह प्राचीन रोगोंके लिये उपयुक्त है। रोग-चिकित्साके समय ओषधी तथा रोगोंके इस लक्षणका भी सादृश्य देख लेना चाहिये।

दी जासकती हैं। और जहाँपर प्राचीन व्याधि, तरुण व्याधिका रूप धारण करती है, वहाँ इससे भी कम दिनोंके अन्तरपर ओषधीकी दूसरी ख़ुराकें दीजासकती हैं। और जो व्याधियाँ वास्तवमें तरुण हैं, उनमें चौबीस, बारह, आठ घण्टोंके अन्तर पर और अत्यन्त अधिक तरुण व्याधि हो तो, घण्टे-घण्टे भर बाद भी ओषधीकी ख़ुराकें दे सकते हैं। यहाँतक कि पाँच-पाँच मिनट बाद भी ओषधीकी ख़ुराकें दी जासकती हैं। परन्तु प्रत्येक ओषधीकी ख़ुराकें रोगकी गतिकी तीव्रताके अनुसार दीजानी चाहियें।

(२४८)

किसी रोगीके रोगके लक्षण जबतक परिवर्त्तित नहीं होते, तबतक तो एक ही ओषधीकी कई ख़ुराकें बार-बार दी जा-सकती हैं; परन्तु यदि लक्षण परिवर्त्तित हो जायें तो परि-वर्त्तित लक्षणोंके सदृश-लक्षण-युक्त दूसरी ओषधीका प्रयोग करना चाहिये।

(२४९)

यदि आंशिकरूपसे सदृश किसी ओषधीका प्रयोग किया गया हो, और उसके प्रयोगके कारण यदि कोई विशेष पीड़ा उत्पन्न हो और वह अगर मूल व्याधिका लक्षण न हो, तो पहले उस लक्षणको किसी प्रतिषेधक * ओषधीके द्वारा दूरकर

* यदि किसी रोगीको दवा दी गयी हो और वह दवा, रोगीके हक़में उचित न हुई, अनुचित हुई हो तो उस दवाके गुणको हटानेकी जो दवा दी जाती है, उसे प्रतिषेधक कहते हैं।

देना चाहिये। परन्तु यदि वह लक्षण बहुत ही साधारण हो, तो उसके लिये किसी प्रतिषेधक ओषधीका प्रयोग न कर, मूल व्याधिके वर्त्तमान परिवर्त्तित स्वरूपके साथ जिस ओषधीका सर्व्वापेक्षा अधिक सादृश्य हो, उसी ओषधीका प्रयोग करना चाहिये।

(२५०)

कोई ओषधी प्रयोग करनेके बाद ६ घण्टेसे १२ घण्टेके भीतर अगर चिकित्सकको यह मालूम हो, कि ओषधी ठीक तौरसे निर्वाचित नहीं हुई है, और रोग घण्टे-घण्टे धीरे-धीरे या जल्दी-जल्दी बढ़ता हुआ मालूम होता हो, तो चिकित्सकको चाहिये, कि उस ओषधीको छोड़कर फ़ौरन दूसरी सदृश ओषधीका प्रयोग करे।

(२५१)

इग्नेशिया, ब्रायोनिया, रसटाक्स, बेलेडोना आदि कई ओषधियां अपनी प्राथमिक क्रियामें कुछ ऐसे पर्यायशील लक्षण उत्पन्न करती हैं, जो परस्पर विपरीत होते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि किसी ओषधीकी पहली ख़ुराक देनेके बाद कई घण्टोंतक अगर रोगीके रोग-लक्षणोंमें कोई परिवर्त्तन होता न दिखाई दे, तो चिकित्सक पुन: उस ओषधीका प्रयोग कर सकते हैं।

(२५२)

परन्तु और-और ओषधियोंका प्रयोग करते समय, ख़ासकर

किसी सोरा-जनित व्याधिमें अगर होमियोपैथिक ओषधी यथोचित मात्रामें दी जांये, फिर भी यदि कोई लाभ होता न दिखाईदे, तो समझना चाहिये, कि जिस कारणसे रोग परिपुष्ट हो रहा है, वह अब भी मौजूद है। अब उस कारणका पता लगाना चाहिये। उसका पता लगानेपर उस कारणको दूर करनेके लिये रोगीके रहनेकी जगह या खान-पान आदिके विषयमें सुधार करना चाहिये। उस कारणको दूर कर देनेपर रोग आप ही आप दूर हो जाता है।

(२५३)

सब प्रकारकी बीमारियोंमें और ख़ासकर तरुण व्याधियोंमें रोगी रोगके थोड़ा भी बढ़ने-घटनेपर बता सकते हैं, पर कोई-कोई रोगी उस सामान्य ह्रास या वृद्धिको अनुभव भी नहीं करपाते। ऐसी हालतमें रोगीकी मानसिक तथा सर्वाङ्गीन अवस्थाओंको देखनेपर ओषधीकी क्रिया मालूम हो जाती है। रोगके ज़रासा दबते ही रोगीका मन प्रसन्न और प्रफुल्लित हो जाता है। उस समय ऐसा मालूम होता है। मानो वह सम्पूर्ण स्वस्थावस्थामें लौट आया है। दूसरी तरफ़ अगर रोग ज़रा भी बढ़ जाता है, तो रोगीकी अवस्था ठीक इसके विपरीत होती है। उस समय रोगीका मन उदास हो जाता है और निराशा और दुःखसे भर जाता है। और रोगीका हाव-भाव देखकर ही मालूम हो जाता है, कि रोग बढ़ता जारहा है। यद्यपि रोगी उन मानसिक यन्त्रणाओंको शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर-

सकता है, तथापि विशेष ध्यानपूर्वक उसकी अवस्था देखनेपर अनुभवी चिकित्सकोंको उसके कष्टोंका पता लगजाता है।

(२५४)

ऐसे भी कितने ही रोगी होते हैं, जो अपने रोगकी कमी या ज़ियादतीको ठीक-ठीक शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं कर सकते और कुछ ऐसे भी हैं जो जान-बूझकर व्यक्त नहीं करते। ऐसे रोगियोंकी ख़ूब अच्छी तरहसे जाँच करनेसे अगर यह मालूम हो, कि नये-नये लक्षण उत्पन्न हो रहे हैं तो समझना चाहिये रोग बढ़ रहा है और यदि जाँच करनेसे यह मालूम हो, कि जो लक्षण पहलेसे थे, उनमेंसे कुछ ग़ायब हो गये हैं, तो समझना चाहिये रोग घट रहा है।

(२५५)

जो रोगी यह स्वीकार करना नहीं चाहते, कि उनके रोगमें कोई परिवर्त्तन हुआ है, उनके लिये चिकित्सकको चाहिये, कि वे पहलेसे रोग लक्षणोंका चित्र तैयार करनेके लिये जो सूची बना रखते हैं, उसके सब प्रश्नोंका जवाब माँगे और रोगी उनका जो जवाब देगा, उसीसे रोगके घटने-बढ़नेका हाल मालूम हो जायेगा। ऐसी अवस्थामें रोगीका मन अगर प्रसन्न देखा जाये, तो समझना चाहिये कि रोग अवश्य ही कम हो रहा है। ओषधी देनेके थोड़ी देर बाद अगर उसकी कोई क्रिया प्रकट न हुई हो, तो कुछ देर और ठहरकर ओषधीकी

क्रिया देख लेनी चाहिये। फिर अगर रोग-लक्षणोंके सम्पूर्ण सदृश होमियोपैथिक औषधी देने पर भी, बहुत देरतक उसके अन्दर कोई परिवर्त्तन होता न दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि रोगीने अपने खान-पान या आहार विहारमें अत्याचार किया है अथवा ओषधीकी मात्रा अधिक परिमाणमें होनेके कारण बहुत देरतक उसकी क्रिया जारी है।

(२५६)

परन्तु ओषधी सेवन करनेके कुछ समय बाद अगर रोगी कुछ ऐसे लक्षणोंके उत्पन्न होनेकी बात कहे, जिनका उस निर्वाचित ओषधीके साथ कोई सादृश्य नहीं हो और साथही रोगी केवल सज्जनतावस यह कहे, कि कोई विशेष पीड़ा नहीं है तो ऐसी अवस्थामें चिकित्सकको समझना चाहिये, कि रोग बढ़ रहा है और वह शीघ्रही वर्द्धित अवस्थामें प्रकट हो आयेगा।

(२५७)

कोई ओषधी अगर बहुतसे रोगियोंको संयोगवश रोग-मुक्त कर सकी हो, तो चिकित्सकको उस ओषधीका पक्षपाती नहीं होना चाहिये। अगर चिकित्सक किसी ऐसी ओषधीके पक्षपाती होजायेंगे, तो उसका दुष्परिणाम यह होगा, कि फिर किसी व्याधिके लिये उस ओषधीसे अधिक अच्छी ओषधी होनेपर भी अपनी जानी हुई, उसी ओषधीका प्रयोग कर-बैठेंगे।

(२५८)

फिर भी यदि किसी ओषधीका कई रोगियोंपर प्रयोग किया गया हो और हरबार उसका कोई अच्छा परिणाम न हुआ हो, तो उसके लिये किसी प्रकारकी दुर्भावना कर लेना भी ठीक नहीं है। क्योंकि पक्षपात पूर्ण हो जानेपर, चिकित्सक उस ओषधीका उस रोगीपर भी प्रयोग नहीं करेंगे, जिसपर उस ओषधीका अच्छा परिणाम हो सकता था। बात यह है, कि चिकित्सकने अपनी ग़लतीके कारणही उस ओषधीका ऐसे रोगियोंपर प्रयोग किया होगा, जिनपर उसका प्रयोग करना उचित नहीं था। ऐसी अवस्थामें उस ओषधीको ख़राब समझ लेना ठीक नहीं है। चिकित्सकको ओषधीका निर्वाचन करते समय इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये, कि रोगीके समस्त रोग लक्षणोंके सदृश लक्षण उत्पन्न करनेवाली ओषधीही उस रोगीके लिये सबसे अच्छी है और इस विषयमें अपने मनकी दुर्भावना त्याग देनी चाहिये।

(२५९)

सदृश चिकित्सा विधानके अनुसार ओषधी बहुतही कम मात्रामें दी जाती है, इस बातपर ख़याल रखकर चिकित्सकको हमेशा इस बातपर दृष्टि रखना चाहिये, कि रोगीके खाने-पीने की चीज़ोंमें किसी प्रकारकी ओषधी तो मिली नहीं है। क्योंकि ऐसा होनेपर जो ओषधी सेवन करनेको दीजा रही होगी, उसकी

क्रियामें विघ्न पड़ सकता है और कभी-कभी दुष्परिणाम भी हो सकता है।

(२६०)

इसीसे प्राचीन व्याधियोंकी चिकित्सा करते समय उन सब बाधक कारणोंको, पहले ही देख और जान लेना चाहिये जो रोग आराम होनेके मार्गमें बाधा डालते हैं। प्राचीन रोगके रोगियोंमें अकसर उनके खान-पान आदिमें कुछ ऐसी चीज़ें मिली हुई रहती हैं, जो रोगको क्रमशः बढ़ाती जाती हैं। *

(२६१)

प्राचीन रोगमें ओषधी व्यवहार करते समय, जिस प्रकारकी

---

* काफी, चाय, शराब, अधिक मसालेकी चीजें, सुगन्धित अर्क, इत्र आदि उतफट, सुगन्धिके फूल, ओषधीमिश्रित दन्त-मञ्जन, चरपरी खटाई, पोठी, ओषधीरूपीक्रिया करनेवाले साग-पात, पनीर, सड़ामांस आदि रोगीको नहीं देना चाहिए। चूर्ण, गरम कमरा, बदपरहेज़ी, गन्दी और भद्दा पुस्तकोंका पढ़ना, बद चलनी, लेटे-लेटे खाना, रातमें अधिक देरतक जागना, खटाई, मिठाई, विशेष खाना, मानसिक वा शारीरिक परिश्रम, सीलका जगहमें रहना आदि हानिकारक हैं। कोई-कोई चिकित्सक तो, इससे भी कहां अधिक परहेज़ रोगीको बताते हैं, पर बहुत परहेज़की भी राय नहीं दी जासकती। अधिक परहेज़ करना भी रोगीके रोगको बढ़ाना ही है।

रहन-सहन और खान-पानसे रोगीको हानि होती है, उसे छुड़ा देना चाहिये। और जिस खान-पान आदिसे रोगीका हित होता हो और रोगके आराम होनेमें सहायता मिलती हो, उस-उस पदार्थको देना चाहिए। उस समय रोगीके मनोविनोद और चित्तकी प्रसन्नताके लिए, विशेष उपाय करना चाहिए, रोगीको खुली हवामें सब ऋतुओंमें थोड़ा थोड़ा भ्रमण कराना चाहिए, व्यायाम कराना चाहिए और बलकारी पौष्टिक पदार्थ खानेको देना चाहिए, पर उस खाद्य-पदार्थमें ओषधी-संबधी गुण नहीं होना चाहिए।

(२६२)

यदि तरुण रोगमें मानसिक गड़बड़ न हो, तो भीतरकी सूक्ष्म एवं निर्भूल प्राण-रक्षिणी शक्ति ही अनुभव-ज्ञानसे यह बता देगी कि, इस रोगमें, किसप्रकार आहार विहारकी आवश्यकता है। इस विषयमें चिकित्सक,रोगीके बन्धु-बांन्धवोंको सचेत कर दे कि, रोगी जिस चीज़को आग्रह-पूर्वक मांगे वह उसे देनी चाहिए; और स्वयं आग्रहपूर्वक, ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देनी चाहिए, जो रोगीके हितमें बाधा डाले।

(२६३)

तरुण रोगका रोगी, खान-पानमें जिस वस्तुकी हार्दिक अभिलाषा प्रकट करता है, वह वस्तु, उसे विशेषरूपसे शान्ति-दायक होती है। 'इस पदार्थमें, किसी भी प्रकारकी ओषधीका

गुण मौजूद नहीं रहता, उससे रोग निर्मूल नहीं हो सकता। केवल वह इच्छाकी ही पूर्ति करती है। यद्यपि रोगीकी अभिलषित वस्तुसे होमियोपैथिक मतसे निर्वाचित ओषधीकी क्रियामें कुछ बाधा पड़ सकती है, तथापि उस वस्तुको थोड़ा-थोड़ा देनेसे, विशेषरूपसे बाधा पड़नेकी सम्भावना नहीं हो सकती है, पर उचितरूपसे निर्वाचित होमियोपैथिक ओषधीकी स्वतन्त्र क्रिया तथा जिन वस्तुओंके लिए, रोगी बलवती इच्छाप्रकट करता है—उनको प्राप्तिपर, उसे जो सुख शान्ति मिलती है, उनसे वह बाधा निर्मूल हो जाती है। इसलिये तरुण रोगसे पोड़ित रोगी, कमरेकी गरमी, शीतलता, बिछौना और ओढ़ना आदि जिसप्रकारका चाहे, ठोक, उसके मनके अनुकूल ही प्रबन्ध कर देना चाहिए। उस रोगीको अधिक मानसिक परिश्रम तथा उत्तेजना नहीं देना चाहिए। *

(२६४)

सच्चे चिकित्सकको, अपनी दवाएं विशुद्ध एवं जानी हुई शक्तिकी रखना चाहिये। जिससे कि, व्यवहार करते समय, ओषधि-संबधी गुणोंपर निर्भर रह सके और उन ओषधियोंकी शुद्धता की परीक्षा कर सके।

---

* प्रायः देखा गया है कि, जो पदार्थ ओषधीकी क्रिया नष्ट करती हैं, उन पदार्थों पर रोगीको इच्छा होती ही नहीं है।

(२६५)

चिकित्सकको, आत्म विश्वाससे, यह धारणा बनाये रखनी चाहिए कि, जो ओषधी रोगीको दी जाती है, वह ठीक है।

(२६६)

प्राणी-जगत * अथवा उद्भिद्-जगतकी जिन-जिन वस्तुओंसे ओषधियां बनती हैं उन उन वस्तुओंको कच्ची हालतमें, बिना रींधी हुई अवस्थामें, व्यवहार करना चाहिए। कच्ची और ताज़ी अवस्थामें दवाके कुल गुण पूर्ण विकसित रहते हैं।†

---

* ओषधी कई प्रकारकी वस्तुओंसे तैयार की जाती हैं, प्राणी-जगत (Animal Kingdom) जीव-जन्तुओंसे जो दवाएँ बनायी जाती हैं। जैसे मधुमक्खीसे एपिस-मेलिफ़िका (Apis mel).

२। धातु-जगत (Metal Kingdom) से अर्जेन्टम्, मेटेलिक्म, (Argentum Metalicum), मर्कसाल (Merc Sol) आदि।

३। उद्भिद्-जगत् अथवा जड़ी बूटीसे (Vegetable Kingdom) से चायना (China) नक्स-वमिका (Nux Vom) आदि बनती हैं।

† जैसे, सौंफ कच्ची हालतमें खानेसे, ओपधीका गुण

(२६७)

जो उद्भिद, कच्ची पर टटकी हालतमें प्राप्त होते हैं उनका रस निकाल लेना चाहिए और रसके बराबरही सुरासार(Alcohal) मिला देना चाहिए, फिर उसका ओषधी सम्बन्धी गुण ज्योंका त्यों बना रहता है, इसप्रकारसे उस रसको बोतलमें कार्क लगाकर चौबीस घण्टेतक एक स्थानपर रखना चाहिए। उसके तलेमें जो रेशादार और लसदार पदार्थ जम जायगा उसको छोड़कर ऊपरका जो तरल पदार्थ संचित हुआ है, वही ओषधीरूपसे व्यवहार्य है,अर्थात् वही ओषधी तयार हुई है। इसप्रकार सुरासार के संयोगसे ओषधीके सड़ने-बिगड़नेको सम्भावना नहीं रहती और उसका ओषधि-गुण चिरकालतक ज्योंका त्यों बना रहता है। ओषधीकी शीशीको अच्छीतरहसे कार्क लगाकर रखना चाहिए, जिसमें धूप और किसी प्रकारकी सुगन्ध आदि न लगजाय।

(२६८)

जो उद्भिद विदेशसे आते हैं, और जिन पेड़ोंकी छाल, मूल आदि ताजी हालतमें नहीं मिल सकती हैं, उनके लिए बुद्धिमान वैद्यको चाहिए कि, यदि वे चूर्ण-विचूर्ण अवस्थामें हों तो,

---

करती है, पर उसी सौंफको तरकारी आदिमें रींधकर खानेसे ओषधीका गुण नहीं करती। उसमेंका ओषधी-सम्बधी गुण, रींधनेसे नष्ट हो जाता है।

उन्हें भलीप्रकार जांच ले, केवल विश्वास पर ही लेकर ओषधी न बनाले।

(२६९)

होमियोपैथिक मतसे ओषधीकी सूक्ष्म शक्तिबढ़ानेका एक ऐसा अश्रुत पूर्व उपाय आविष्कार हुआ है, जो आजतक केवल-मात्र होमियोपैथिकमें ही व्यवहृत हो रहा है, और दूसरे वैद्य अद्यावधि ओषधीकी सूक्ष्म-शक्ति और तज्जनित रोग दूर करनेकी क्षमता (सामर्थ्य) को बढ़ानेके उपायकी बाबत कुछ भी नहीं जान सके हैं और यह प्रायः देखा गया है कि, जिस पदार्थकी मूल अवस्थामें, किसीप्रकारकी ओषधीकी क्रिया नहीं रहती ; उपरोक्त उपायसे उसमें ओषधी-सम्बन्धी गुण उत्पन्न हो आते हैं *।

(२७०)

ताज़ा अर्क और सुरासार, समभाग मिला कर, जो दवा प्रस्तुत हुई है, उसकी दो बूंद, ९८ बूंद सुरासारके साथ मिला कर, शीशीमें रखने, और उसे दो बार हिलानेसे, उसकी पहली शक्ति तयार होती है। इस पहली शक्तिको एक बूंद, ९९ बूंद सुरासारमें मिलाकर, दो बार हिलानेसे २ शक्तिकी ओषधी तयार होती है। इसी प्रकार दो शक्तिकी ओषधीको एक बूंद ९९ बूंद सुरासार में मिलानेसे ३ शक्तिकी दवा तयार

---

* जैसे नमकसे तैयार की हुई ओषधी (Natrum Mur) नेट्रमम्युर, चूनेसे (Calcaria Carb) इत्यादि।

होती है, इसी प्रकार, ४ से, क्रमशः ३० शक्ति और इससे भी अधिक शक्तिकी ओषधी तैयार होती है, इसी प्रकारकी बनी हुई ३० शक्तिकी ओषधी सर्व साधारणमें प्रायः व्यवहृत होती है।*

(२७१)

सब प्रकारके सूखे हुए उद्भिद् पदार्थ, जिनका ताज़ा रस नहीं मिलता, जैसे पेट्रोलियम, (Petrolium), धातव पदार्थ ; फ़ासफ़ोरस आदि २ वस्तुओंसे उच्च शक्तिकी ओषधी निम्न लिखित विधिसे बनाई जाती हैं। उनको सूखी अवस्थामें लेकर, उस वस्तुके बराबर भागमें दुग्ध-शर्करा (Sugar of milk) मिलाकर घोटे, फिर उसमेंके दो अंश, ९८ अंश दुग्ध-शर्कराके साथ मिलाकर घोटे, फिर उक्त घोटे हुए अंशमेंसे एक अंश, ९९ अंश दुग्ध-शर्कराके साथ घोटे, इसी प्रकार, एकबार और क्रिया करे। सारी क्रिया, क़रीब तीन घन्टे तक करनी चाहिये। फिर उसमेंका एक अंश चूर्ण (Powder) लेकर, ९९ बूंद सुरासारसे मिलाये, पुनः २७ शीशियां होनी चाहिये, इन सत्ताइस शीशियोंमें, उपरोक्त विधिसे, एकसे एक क्रमशः ऊंची शक्ति बनाता जाये। तब ३० शक्तिकी ओषधी तयार होती है। यह ओषधी उसी प्रकारसे तयार

* जब शीशीमें एक बून्द पिछली शक्तिकी ओषधीकी ९९ बून्द सुरासारसे मिलाके रक्खे, तब शीशीका ¾ अंश.

होता है, जिस विधिसे उपरोक्त सूत्रमें, उद्भिदकी ओषधी तयार होती है।

(२७२)

एक रोगीको, एकही समयमें, एकही दवा देनी चाहिये, एकसे अधिक दवा देना किसी प्रकार ठीक नहीं है।

(२७३)

एक समयमें, समुचित रूपसे सुपरीक्षित केवल एक ओषधीका प्रयोग करना प्रकृतिके नियमानुकूल है, अथवा कई एक पृथक पृथक् गुण करनेवाली ओषधियोंको मिलाकर प्रयोग करना प्रकृतिके नियमानुकूल है, समझमें नहीं आता कि, यह द्विविधा कैसे उत्पन्न हो गयी।

(२७४)

जब कि एक सच्चा चिकित्सक यह देखता है कि, एकही ओषधी विना किसी दूसरी चीज़के मिलाये व्यवहार करनेसे उसकी इच्छानुसार रोगको सदाके लिये निर्मूल कर देती है, तब उसकी इच्छा एकसे अधिक या मिश्रित-ओषधी देनेकी कभी न होगी। जब कि एक-एक ओषधी अलग-अलग एक स्वस्थ मनुष्यपर परीक्षित हो चुकी है, तथापि उसको मिलाकर व्यवहार करनेसे कोई भी निश्चित नहीं कह सकता, कि उसका क्या फल होगा, एक ओषधी दूसरीकी क्रियाको

एक चौथाई खाली रहना चाहिये, जिसमें हिलाते समय दवा भली प्रकार मिल जाय।

नष्ट करदेगी अथवा बदल देगी। * और साथ ही साथ यह बात भी है, कि यदि ओषधी उचित रूपमें लक्षणोंसे सादृष्यता करके होमियोपैथिक विधिसे निर्वाचितकी गयी है, तो निश्चय ही वह अकेले हो रोगको समूल नष्ट करनेमें समर्थ होगी और यदि मान लिया जाय कि ओषधी पूर्ण रूपसे सदृश नहीं थी, तो बुरेसे बुरा फल यह होगा कि वह उपकार नहीं करेगी किन्तु तब भी इतना फल तो अवश्य ही होगा, कि उससे हमारा चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ेगा, अर्थात् वह असदृश्य लक्षणोंवाली अकेली ओषधी जो नये लक्षण उत्पन्न करेगी, वह लक्षण स्वस्थावस्थामें परीक्षित लक्षणोंसे सादृश्य रक्खेंगे। जिससे पूर्व प्राप्त लक्षणोंकी पुष्टी तो हो ही जाती है। यह लाभ मिश्रित ओषधी देनेसे कदापि नहीं हो सकता।

(२७५)

ओषधीका केवल सादृश्य लक्षण देखकर ही निर्वाचन यथेष्ट नहीं है। उसकी मात्राका उचित रूपमें अर्थात् छोटीसे छोटी मात्राका प्रयोग होना भी अत्यन्त आवश्यक है। ओषधी सदृश विधानके अनुसार ही, क्यों न दो गयो हो, परन्तु यदि उसकी मात्रा अधिक है, तो वह निश्चय ही उपकारके स्थानमें अपकार करेगी, क्योंकि मात्रा अधिक होनेसे उसमें रोगके

---

* जैसे घी और शहत दोनोंके गुण अलग-अलग अमृतके तुल्य हैं। परन्तु दोनोंके समभागमें मिश्रित हो जानेसे उनका गुण विषसे भी अधिक भयंकर होजाता है।

सदृश लक्षणोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति भी अधिक होगी। तथा उस शक्तिसे वह जीवन-शक्ति तथा जीवन-शक्ति द्वारा रोगसे पीड़ित स्थानोंको विशेष रूपसे उत्तेजितकर देगी, उससे हानि यह होगी कि रोगी एकाएक पीड़ा बढ़ जानेसे व्याकुल हो जायगा।

(२७६)

उक्त कारणसे यद्यपि ओषधी सदृश लक्षणानुसार ही क्यों न दी गयी हो, परन्तु यदि वह अधिक मात्रामें दीजायगी, तो वह निश्चयही हानिकारक होगी और जितनीही अधिक मात्रा होगी उतनीही विशेष हानिकारक होगी, अधिक मात्राकी ओषधी जितनीही लक्षणोंसे विशेष सादृश्यता रखती होगी और जितनी ऊंची शक्तिवाली होगी वह उतनीही अधिक हानिकारक है। उसके मुकाबलेमें असदृश्य विधानकी ओषधी उतनीही ज़ोरदार होने पर भी उतनी हानिकारक न होगी, क्योंकि उस असदृश्य लक्षणवाली ओषधीमें रोगके सदृश्य-लक्षण उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है। सदृश्य-लक्षणोंवाली जो ओषधी अल्प मात्रामें दी जाती है, वह नाममात्रको ओषधी-जनित-रोग उत्पन्न करके शीघ्रही रोगको समूल नष्ट कर देती है, परन्तु जो ओषधी जितनीही अधिक मात्रामें दी जाती है, वह उतनीही अधिकतासे ओषधी-जनित रोग उत्पन्न करती है और उससे, होता यह है कि मूलरोग तो ओषधीके सदृश लक्षण होनेके कारण नष्ट हो जाता है परन्तु ओषधी-

जनित रोगसे रोगी विशेष पीड़ा पाता है और इससे उसकी शक्तिका बहुत बड़ा ह्रास होता है।

(२७७)

उक्त कारणोंसे होमियोपैथिक नियमानुसार सदृश लक्षण देखकर निर्वाचित की हुई ओषधी अल्प मात्रामें देनेसे आश्चर्य-जनक लाभ पहुंचाती है।

(२७८)

अब प्रश्न यह उठता है कि रोगकी यन्त्रणाको निश्चय-रूपसे समूल नष्ट करनेके लिये सदृश-लक्षणोंवाली ओषधीकी मात्रा कितनी अल्प होनी चाहिये ? इस विषयका निर्णय करनेके लिये तथा निश्चित रूपसे निर्वाचन करके उसका पूर्ण फल पानेके लिये ओषधीकी मात्राका निश्चय करना तर्क वितर्क, प्रमाणिकता अथवा कल्पनाका कार्य नहीं है, किन्तु यह कार्य परीक्षण परियावेक्षण और पूर्ण अनुभवका है। यह समझना सरासर मूर्खता है कि ओषधीकी मात्रा बढ़ा देनेसे फल अधिक अथवा शीघ्र होता है। किन्तु अनुभवसे यह सिद्धहो चुका है कि, सदृश लक्षणोंवाली ओषधीकी मात्रा जितनीही अल्प होगी उतनाही अधिक और शीघ्र लाभ होगा।

(२७६०)

पूर्ण अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि, रोग चाहे जितना पुराना और कैसा ही जटिल क्यों न हो परन्तु यदि रोगीकी, रोगके कारण, किसी अङ्ग विशेषकी क्षती न हो गई

हो और यदि उसे (रोगीको) ओषधी सम्बन्धी और किसी पदार्थका व्यवहार न कराया जाय, तो होमियोपैथिक नियमानुसार लक्षणोंसे पूर्णसदृशता रखनेवाली ओषधीकी चाहे जितनी छोटी मात्रा क्यों न दीजाय, वह उस रोग को पराजय करने और समूल नष्ट कर देनेमें पूर्णतया समर्थ है।

(२८०)

अनुभवके अकाट्य विधानसे निश्चित हो चुका है कि लक्षणोंसे सादृश्य रखनेवाली ओषधीकी मात्रा अल्प होनी चाहिये, और इतनी अल्प होनी चाहिये कि जिससे (ओषधीसे) ओषधी-जनित रोगका प्रादुर्भाव इतना थोड़ा हो जिसका कि रोगी अनुभव भी न कर सके। इस विधानको देखकर साधारण चिकित्सक और संसारी विचारके मनुष्य हँसते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि अनुभव होनेपर उन्हें भी उक्त विधानके आगे सिर झुकाकर अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ेगी।

(२८१)

ओषधीमें यह शक्ति है कि, मनुष्य चाहे जितना हृष्टपुष्ट या कमज़ोर हो और उसको चाहे जैसा प्राचीन अथवा तरुण रोग हो, रोगी बच्चा हो, जवान हो या वृद्धा हो परन्तु यदि ओषधी सदृश विधान के अनुसार, अकेली और अल्प मात्रामें दी जायगी, तो वह निश्चयही रोगीके रुग्ण स्थानोंपर अपना प्रभुत्व जमालेगी

अनुभव द्वारा सिद्ध किये हुए उक्त विधानके विरुद्ध तर्क-वितर्कका जो विश्वास है वह केवल मूर्खतायुक्त है।

(२८२)

होमियोपैथिक ओषधीकी अल्प मात्रा जो कि ओषधी-जनित बहुत कम रोग उत्पन्न करती है, रोग ग्रसित एवम् उत्तेजित स्थानोंपर अपना प्रभाव जमा लेती है और उस स्थानमें जो जीवनी-शक्ति है उसके द्वारा उस रोगसे सदृश्यता रखता हुआ रोग, प्रकृत रोगसे कुछ ज़ोरदार अवस्थामें उत्पन्न होता है, इससे होता यह है कि, प्राकृतिक रोग तो दब जाता है और उसकी जगह रोगीके शरीरमें अब केवल ओषधी-जनित रोग रह जाता है और वह अल्प मात्राके प्रभावसे अथवा प्रकृतिके स्वभावसे तुरन्त नष्ट हो जाता है और अब यदि रोग तरुण हो, तो रोगीका शरीर रोग-मुक्त होकर रोगी बिल्कुल स्वस्थ हो जायगा।

(२८३)

प्रकृतिके अनुसार काम करके रोगको सदाके लिये समूल नष्ट कर देनेके लिये होमियोपैथिक ओषधीकी छोटीसे छोटी मात्रा निर्वाचित करनी चाहिये, उससे यह होगा कि यदि चिकित्सक ओषधी निर्वाचन में भूल कर दे और कुछ की कुछ ओषधी देदे, तो मात्रा कम होनेके कारण उससे (ग़लत ओषधीसे) हानि नाममात्रको होगी, क्योंकि अल्प मात्रा द्वारा उत्पन्न हुआ, ओषधी-जनित रोग जीवनी-शक्तिकी

स्वाभाविक क्रियासे तुरन्त द्रव जायगा और फिर शीघ्रही सुनिर्वाचित ओषधीकी अल्प मात्रा देनेसे मूल रोग सदाके लिये नष्ट हो जायगा।

(२८४)

... ... *

(२८५)

... ... *

(२८६)

होमियोपैथिक ओषधीकी एक निश्चित मात्रा जितनेही अधिक द्रव पदार्थमें मिश्रित करके व्यवहारकी जायगी उतनाही उसका असर बढ़ता जायगा क्योंकि इस अवस्थामें जब ओषधीका व्यवहार किया जाता है, तो वह शरीरके रोगग्रसित भागोंमें शीघ्रताके साथ पहुंचकर अपना असर जमा लेती हैं, तर्कवादी कह सकते हैं कि अधिक पतली होनेके कारण वह (ओषधी) विशेष कमज़ोर होजायगी और उतनी अधिक फलप्रद न होगी, परन्तु होमियोपैथिक नियमानुसार व्यवहारकी जानेवाली ओषधीके लिये यह नियम लागू होते नहीं देखा गया है।

(२८७)

जब ओषधीका मिश्रण किसी द्रव पदार्थसे मामूली तौर

---

* इन दोनों सूत्रोंमें उक्त लिखित सूत्रोंके अल्प मात्रा विधानकी बातोंको दोहराया है।

पर किया जाता है अथवा अनिष्ट रूपसे ओषधी मिश्रितकी जाती है और वह (ओषधी) द्रव पदार्थके अङ्ग प्रति अङ्गमें भींज जाती है तो उससे बिना मिश्रितकी हुई ओषधीसे फलमें बहुत अधिक विभिन्नता होती है। इससे, हरएक चिकित्सकको इस बातका ज्ञान होना चाहिये, कि होमियोपैथिक ओषधीका मनोवांछित फलप्राप्त करनेके लिये उसकी मात्रा नाज़ुक अथवा हृष्ट रोगीके लिये कितभी कम और किस रूपमें व्यवहार करनी चाहिये।

(२८८)

तरल रूपमें (पानी या सुरासारसे मिश्रित करके) जब ओषधी दीजाती है, तो उसका असर विस्तृत हो जाता है, क्योंकि जिस अङ्गमें ओषधी तरल रूपमें है, वहांसे रुग्ण अङ्गों-तक अत्यन्त शीघ्रतासे पहुंचकर समस्त रुग्ण अङ्गोंपर इतनी शीघ्रतासे और अधिकतासे असर जमा देती है, कि जिसको (असर) यदि जादूसे भी बढ़ कर कहा जाय, तो भी अत्योक्ति न होगी।

(२८६)

शरीरके वे अङ्ग जिनमें छूनेसे विशेष असर मालूम होता है, उन पर लगानेसे भी ओषधी अपना पूरा असर जमा सकती है और वे अङ्ग शरीरके समस्त रुग्ण अङ्गोंपर ओषधीका असर पहुंचा देते हैं।

(२६०)

पेट, मुंह, और जीभ ओषधी क्रियाका विशेष रूपसे फल

देनेवाले अङ्ग समझे जाते हैं, किन्तु गुहा, जननेन्द्री, नाकके अन्दर और खासकर शरीरके सभी मर्म स्थानोंपर लगानेसे ओषधीका पूर्ण फल प्राप्त हो सकता है, तथा शरीरके वे अङ्ग जिनपरकी खाल नहीं है, जैसे फोड़ा घाव इत्यादि इन पर भी लगानेसे दवा अपना पूर्ण असर जमा लेती है, और सबसे बढ़ कर ओषधीकी क्रियाको कार्य रूपमें परिणित करनेके लिये उसको मुंह अथवा नाकके द्वारा सांससे खिचंवाकर प्रयोग करना फलप्रद होता है।

(२६१)

वह स्थान, जिसने अपनी शक्ति छोड़दी है, जैसे, यदि नाक और जीभने अपनी सूंघने और चखनेकी शक्ति छोड़दी हो, तब भी उस (अङ्ग) के द्वारा ओषधीकी शक्ति समस्त अङ्गोंमें व्याप्तकी जा सकती है पहिले तो उन्हीं (शक्ति छोड़े हुए अङ्गो) में फिर उनके द्वारा समस्त अङ्गोंमें।

(२६२)

शरीरके ऊपरी हिस्से जिनपर कि खाल है उनपर भी ओषधी, लगानेसे अपना पूर्ण असर दिखलाती है और खासकर द्रव रूपमें, परन्तु अङ्ग जितना कोमल होगा असर भी उतनाही अधिक होगा।

(२६३)

आवश्यक है कि यहां पर थोड़ासा जीव सम्बन्धी वशीकरण विद्या अर्थात् महामान्य मेस्मर साहेबकी चलाई हुई

'मेस्मरेज़िम' विद्याका जिसका कि प्रभाव रोगियोंपर ओषधियोंसे कहीं बिभिन्न रूपमें पड़ता है, वर्णन कर दिया जाय। इस विद्याका मुख्य प्रभाव इच्छा-शक्ति (Will Pover.) की तीव्रता पर मुनहसर है। निरोग करनेकी बलवती सदिच्छा करके हाथसे छूनेसे इस विद्याका असर होता है और क्रिया विशेषकर होमियोपैथिक विधानसे ही विशेष फलप्रद होती है. क्योंकि इस विधानमें जिस तरहके रोग लक्षण दूरकरने हैं उसी तरहके लक्षण उत्पन्न किये जाते हैं। बच्चेदानीसे खून गिरना और यहांतक कि मृत्युआसन्न रोगीको भी केवल सदिच्छा द्वारा एक बार हाथकी हथेलीको (बहुत धीरे नहीं) सिरसे लेकर (सारे शरीरको छूते हुए) पैरतक उतार देनेसे आराम कर देना वशीकरण विद्याके बायें हाथका खेल है। इस विद्या द्वारा जीवनीं-शक्तिको (जब कि वह एक स्थानपर जमा हो जाय) सम रूपसे सारे शरीरमें फैला कर कठिनसे कठिन रोगको बातकी बातमें आराम किया जा सकता है। जैसे यदि किसी कमज़ोर रोगीके सिरमें खून जमा हो गया है और चिन्ता-जनक घबड़ा-हट हो या किसी कारणवश चेष्टा करने पर भी नींद न आती हो तो जीवनी शक्तिको सारे शरीरमें समरूपसे फैला कर रोगीको रोगमुक्त करनेके लिये ज़रा ज़ोरसे एकबार हथेलीको सिरसे पैरतक उतार देना यथेष्ट उपाय होगा और यह कार्य जितनी सरलतासे वशीकरण विद्यासे (Mesmeresim) हो सकता है ओषधीसे नहीं।

यदि शरीरका कोई अङ्गविशेष किसी प्राचीन रोग (फोड़ा अथवा कम्पवायु आदि) के कारण जीवनी-शक्ति विहीन हो गया हो, तो उस वस्थामें जीवनी-शक्ति लानेके लिये चिकित्सकको विश्वास पूर्व्वक सदिच्छासे (निरोग करनेकी) बलवती कामना करके उस अस्थानपर अपने हाथकी हथेली या हाथकी उगलियोंकी नोक रखकर यह सोचना चाहिये कि हमारे हाथके असरसे इस स्थानमें जीवनी-शक्ति भर रही है। यदि यह कार्य्य चिकित्सककी पूर्ण इच्छा-शक्ति द्वारा किया जाय तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उस स्थानमें जीवनी शक्तिका संचार हो जायगा और बहुतसे मार्केके रोगी इस प्रकार निरोग किये गये हैं। विचित्रताको बात तो यह है कि बहुतसे मृतवत पड़े रोगियोंको चिकित्सकके केवल देख लेनेसे लाभ पहुंचा है और वे अच्छे हो गये हैं। यह शक्ति केवल इस विद्याकी है।

(२६४)

जब रोगीमें जीवनी-शक्तिका प्रवाह बढ़ानेकी आवश्यकता हो, तो भी उक्त आकर्षण विद्याका प्रयोग किया जाता है और जब जीवनी-शक्तिका प्रवाह रोगीके किसी अङ्गविशेषसे कम करनेकी आवश्यकता होती है या एक जगह एकत्रित जीवनी-शक्तिको तितर बितर करनेकी आवश्यकता होती है तब इसके विपरीत क्रियाकी जाती है और इसको विकर्षण विद्या कहते हैं। जिस प्रकार ऊपरसे नीचे हाथ फेर कर आक-

र्षण विद्याका प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार नीचे पैरकी तरफ़से सिर तक उलटा पास करके विकर्षण किया जाता है। पास करनेकी सबसे प्रधान विधि यह है कि अपने दोनों हाथके पञ्जोंको पूरी तरह फैलाकर सब उंगलियां आपसमें मिलाकर, रोगीके शरीरसे एक इन्चकी दूरीपर उंगयोंकी नोक करके सिरसे पैरतक उताराना चाहिये और जितनोही जल्दी ऊपरसे नीचे हाथ पास होगा लाभ भी उतना ही शीघ्र होगा। जिस तरह आकर्षण पास द्वारा खून गिरने, अनिद्रा, किसी अङ्गका जीवनी-शक्ति विहीन होजाना आदि रोग आराम किये जासकते हैं, उसी प्रकार विकर्षण पास द्वारा खूनका एक जगह एकत्रित हो जाना जीवनी-शक्तिका किसी स्थानमें अत्यन्त प्रवाह हो जानेसे हौलदिली अत्यन्त निद्रा आदि रोगका नाश किया जाता है *। यह विषय इतना जटिल है कि इसको

---

(१) * आकर्षण अथवा विकर्षण विद्याका प्रभाव साधना पर निर्भर है। चिकित्सक साधना द्वारा इच्छा-शक्तिको जितनोही बलवती करलेगा उतनाही अधिक वह इस विद्या द्वारा रोगीपर प्रभाव जमानेमें समर्थ होगा।

(२) जिस रोगीपर आकर्षण अथवा विकर्षण विद्याका प्रयोग कियाजाय उसमें निम्नलिखित विशेषता होनी आवश्यक है।

(क) रेशमी कपड़ा न पहिने हो।

(ख) बाल और नाखून न बढ़े हों।

(ग) अपनेसे अधिक बलवान अथवा अत्यन्त निर्बल न हो।

पूर्णरूपसे समझानेके लिये यदि इस पुस्तकके इतनी बड़ी एक पुस्तक और लिख दीजाय तब भी थोड़ा है। परन्तु यहांपर जो कुछ लिखा गया है यदि चिकित्सक विश्वास करके उतनी क्रियाको कार्यमें परिणित करसके तोभी वह साधारणतः रोगीको बहुत अधिक लाभ पहुंचा सकता है।

(घ) चिकित्सक पर विश्वास करता हो।

(३) विकर्षण अथवा आकर्षण पास करते हुए रोगीकी अवस्थाका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि रोगीके शक्तिसे अधिक आकर्षण अथवा विकर्षण हो जानेपर उसके (रोगीके) जीवन पर आघात हो जाना असम्भव नहीं है।

होमियोपैथीसे प्रेम रखनेवाले पाठकोंके लिये कुछ मनोरञ्जक बातें।

यह सिद्ध हो चुका है कि होमियोपैथिक अर्थात् सदृश-चिकित्सा विधानही रोगीको रोग मुक्त करनेका एकमात्र साधन है, अब प्रश्न यह उठता है कि एलोपैथिक अयुर्वेदिक तिब्बी आदिके चिकित्सक अपने रोगियोंको किस प्रकार निरोग करते हैं।

उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है—वे रोगकी ऊपरी दवा देते हैं, जिससे रोगीका रोग दब जाता है और लोग उसेही निरोगावस्था समझ लेते हैं, और यदि कभी सचमुचही रोगी रोग-मुक्त हो गया तो यह निश्चय है, वह किसी भी मतानुसार दी हुई ओषधीसे क्यों न अच्छा हुआ हो परन्तु उस ओषधीकी (जिससे कि रोगी रोग मुक्त हुआ है) क्रिया होमियोपैथिक विधानानुसार होगी। और उक्त बातको सिद्ध करनेके लिये कुछ प्रमाण नीचे लिखे जाते हैं।

१। एलोपैथिक डाक्टर लाडर ब्रन्टन जोकि और और पदोंके अतिरिक्त रायल फ़िज़ीशियनकालिजमें मटीरियामेडिकाके परीक्षक रहे हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक (टेक्स्टबुक आफ़ फ़ारमाकालोजी थ्यूरापेटिक्स और मटीरियामेडिकामें (Text book of Pharmacalogy, Theurapetics and Materiamedica) में १०६६ पृष्ठसे ११९८ पृष्ठ तक कुछ ओषधियोंका वर्णन किया है

इनसब (ओषधी) का उल्लेख करनेके लिये तो वहुत स्थानकी आवश्यकता है परन्तु उदाहरणार्थ कुछका उल्लेख यहां किया जाता है। इतना और लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन ओषधियोंका अबतक एलोपैथिक चिकित्सासे कोई सम्बन्ध नहीं था ; यह डाक्टर ब्रन्टन साहबका नवीन आविष्कार है, अतः ये ओषधियां और इनका यह प्रयोग एलोपैथोंके लिये बिल्कुल नवीन चीज़ है।

आप लिखते हैं कि :—

फोड़ोंकी चिकित्सामें कैल्सिक सलफाइड (Calcic Sulphide) अल्पमात्रामें दीजानी चाहिये (अल्पमात्रा होमियोपैथिक विधानानुसार) और कैल्सिक सलफाइडका दूसरा नाम होपर सल्फ़ (Heper Sulph) है।

अम्लपित्तमें पलसटिल्ला (Pulstilla) फलप्रद है।

धातुक्षीणतामें अल्पमात्रामें कैन्थरिस (Cantheris)।

धुन्धमें अल्पमात्रामें रूटा (Ruta)।

मासिकधर्मविकारमें इगनेशिया (Ignatia)।

दमेमें इपिकाक (Ipecac)।

वायुरोगमें बेलैडोना (Belladonna)।

ज्वरमें एकोनाइट (Aconite)।

पामारोगमें रसटाक्स (Rhustox)।

दस्तोंकी चिकित्सामें आरसेनिक (Arsenic)।

मोतीझरेके रोगीको आरनिका (Arnica)।

सूज़ाकके रोगीको कैन्नबिस इण्डिका (Cannabis Indica), आदि आदि औषधियां फलप्रद और गुणदायक होती हैं।

अब ध्यान देनेकी बात है कि उक्त औषधियोंमें कुछ तो बेचारे एलोपैथोंकोंको मालूम भी न थीं, क्योंकि एलोपैथीकी पुस्तकोंमें इनका नाम भी न मिलता था और बाकीकी क्रिया-प्रणाली एलोपैथिक नियमानुसार सर्वथा विरुद्ध है।

इन औषधियोंका आविष्कार और उक्त प्रयोग होमियोपैथीसे हुआ है और होमियोपैथीकी साधारणसे साधारण पुस्तकोंमें इनका वर्णन पाया जाता है, परन्तु डाकृर साहेबने इन्हे अपनी पुस्तकमें लिखकर इनको एलोपैथिक बनानेका प्रयत्न किया है और मज़ेकी बात तो यह है कि आपने इन्हे कहांसे उधृत किया है इस बातका वर्णन करना भी अनुचित समझा या शायद आप भूल गये हैं! परन्तु आपके भूल जानेसे क्या होता है; डाकृर "ह्यूजैज़ मैनुअल आफ़ होमियोपैथिक फ़ारमाकोडाइनामिक्स (Hughes Manual of Homœopathic Pharmacodynamics) पुस्तकको एकबार देखनेहीसे मालूम हो जायगा कि उक्त औषधियोंका वर्णन उससे लिया गया है। *

२। संसारकी सभी पुस्तकोंसे यह सिद्ध होता है कि होमियोपैथिक नियमानुसार हैज़ेके रोगीके लिये आरसेनिक

* उक्त उदाहरण एक एलोपैथिक एम०, डी०, के पत्रसे, जोकि उसने फ़िज़ोशियनोंके रायलकालिजके सभापतिको लिखा था, उधृत किया गया है।

एक फलप्रद ओषधी है और बहुधा होमियोपैथिक चिकित्सक इसका व्यवहार करते हैं। चेस्टरफ़ील्डके एक नामी एलोपैथिक डाक्टर सी०, ब्लैकने, १८५७ ई० में एक नामी पत्रिका लैन्सेट (Lancet) में हैज़ेकी बीमारीमें आरसेनिककी उपयोगिता बतलाते हुये लिखा है कि "हमने हैज़ेकी बीमारीमें अनेकबार आरसेनिकका व्यवहार किया और सर्वदा इससे संतोष-जनक फल पाया, और मेरा पूरा विश्वास है कि हैज़ेकी चिकित्सामें आरसेनिक सर्वश्रेष्ठ ओषधी है"।

३। होमियोपैथिक चिकित्सासे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक मनुष्यको अच्छी तरह ज्ञात होगा कि सबसे पहिले डाक्टर हैनिमैनने कालीखांसी (Whooping cough) के रोगीके लिये ड्रोसेराकी (Drosera) उपकारिता सिद्धकी थी। अब अप्रैल मास सन् १८८० ई० की लैन्सेट पत्रिकामें डाक्टर मरेल (Murrell) एक रोगीका वर्णन करते हुये लिखते हैं कि मैं ६० वर्षके एक बुड्ढेकी कालीखांसीकी चिकित्सा करते हुये सब एलोपैथिक ओषधियां देकर हार गया, तब मैंने एक होमियोपैथिक पुस्तकसे ड्रोसेराके उपयोगको पढ़कर, पाँच पाँच बूंदकी मात्रामें उक्त ओषधीका अपने रोगीको व्यवहार कराया, परन्तु मात्रा अधिक होनेके कारण कोई लाभ न हुआ, तब मैंने उस बुड्ढेको होमियोपैथिक नियमानुसार अल्पमात्रामें उसका व्यवहार कराया। प्रशंसा है इस ओषधीकी कि दोही सप्ताहमें वह रोगी पूर्णतया रोग-मुक्त हो गया।"

सीरम * (Serum) का व्यवहार।

प्रोफ़ेसर ई०, वान, बेहरिङ्ग (E. Von, Behring) एलोपैथिक डाक्टर जिन्होंनेकि कण्ठनाली-प्रदाह (Diptheria) और धनुष्टङ्कार (Tetanus) रोगके लिये प्रतिषेधक सीरम तैयार किया है उनके निम्नलिखित कथनोंसे सीरम होमियोपैथिक विधानांनुसार सिद्ध होता है।

i. डा० जेनरने जब चेचकके टीकेके लिये एक प्रकारका वैक्सीन (Vaccine) तैयार किया तो उसके लिये कल्पनाशील वैज्ञानिक व्यक्तियोंने बहुत कुछ छानबीनकी, परन्तु उससे न तो वे इस वैक्सीनकी कोई उचित व्याख्या कर सके, न उन्हें भैषज्य सम्बन्धी कोई ज्ञान ही मिला ! हां ! भैषज्य ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ डाक्टर 'पेस्टर' साहबने एक व्याख्या निकाली ; परन्तु उसके अर्थ डा० हैनिमैनके होमियोपैथिक शब्दोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है (अर्थात् यह टीका होमियोपैथिक विधानानुसार है)।

ii. भेंड़को जब ऐनथ्रैक्स † (Anthrax) रोग होता है

---

* रोगसे उत्पन्न छोटे छोटे कीड़ोंयुक्त रोगी शरीरसे निकाल कर तैयार किया हुआ तरल पदार्थ "सीरम" कहलाता है। जिस रोगके कीड़ोंसे सीरम तैयार किया जाता है शरीरमें प्रविष्ठ कर देनेसेउस रोगके कीड़ोंका नाश करना सीरमका प्रधान गुण है। अतः यह (सीरम) उस रोगका प्रतिषेधक तथा नाशक होता है।

† फोडे हो जानेवाला एक प्रकारका अत्यन्त घीतक रोग।

तो उसी रुग्ण में इसे निकाल कर तैयार किया हुआ, सीरम में इनमें प्रविष्ट (Inject) करनेसे उस रोगको संक्रामकता रुक भी जाती है, और यदि वह रोग उपस्थित हो तो उसका सर्वथा नाश भी हो जाता है। इस रोगकी क्रिया तथा उस संक्रामक रोगकी क्रिया सदृश हैं, अत: इस विधानको होमियोपैथिकके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

iii. मैंने जिस समय बर्लिन शहरके फ़िज़ियालोजिकल सोसाइटीमें धनुष्टङ्कार प्रतिषेधक सीरमपर व्याख्यान देते हुये कहा था कि पशुओंपर जिस सीरमका व्यवहार किया जाता है वह जितना ही अधिक डाइल्यूटेड † (Diluted) होगा उतनाही अधिक लाभकारी होगा।

उस समय एक डाक्टर साहब बहुत नाराज़ हुये और कहने लगे कि ऐसी बात सभामें मत निकालो, इससे होमियोपथिक विधानकी पुष्टि होती है, तो मैंने निधड़कतासे यही उत्तर दिया था कि मुझे रोगोंको रोग-मुक्त करने तथा असाध्य रोगको साध्य बनानेके लिये चाहे किसी भी क्रियाका अनुसरण क्यों न करना पड़े, मैं निस्संकोचभावसे उसी पथका अवलम्बन करूंगा जिससे कि रोगीको लाभ अधिक और शीघ्र हो—मैं लकीरका फ़कीर होना किसी भी प्रकारसे आवश्यक नहीं समझता और अब भी मेरा यही मत है।

बहुधा लोग कह देते हैं कि होमियोपैथिक चिकित्सा-

---

† सुरासार अथवा जलसे किसी पदार्थको ऐसे मिश्रित करना कि उसका विभाग अदृश्य अंशोंमें हो जाय तो उस विधिको डाइल्युट करना कहते हैं।

विधानकी औषधियां केवल चीनीकी छोटी छोटी गोलियां अथवा पुड़ियां हैं इनसे बच्चोंको फुसलानेके अतिरिक्त होता जाता कुछ नहीं है। हम यहांपर यह दिखलाना चाहते हैं कि हमारी इन छोटी छोटी गोलियों अथवा पुड़ियोंमें क्या असर है। इन्टरनेशनल होमियोपैथिक कौंसिल द्वारा अच्छी तरह जांच करके प्रकाशित रिपोर्टके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं जिससे होमियोपैथीकी श्रेष्ठता प्रकट होती है :—

होमियोपैथिक चिकित्सा द्वारा।

पागलपनके रोगमें।

सरकारी होमियोपैथिक पागल खाना।	सालाना खर्च	रोगियोंके लिये स्थान	कितने प्रतिशत अच्छे हुये।	किस समयकी रिपोर्ट।
मिडिल स्टेट हासपिटल (न्युयार्क)	१११२०००)	२०४६	४० २१/१००	१९००से १९०४तक
वेस्टबोरो स्टेट हास-पिटल।		१०००	४६ २/१०	गत पांच वर्षमें १९१० तक।
गेटेम स्टेट हासपिटल।	७६०१६९)	१२९६	४४ २६/१००	गत १५ वर्षमें १९१० तक।
वाटर टाउन स्टेट हास-पिटल (इलिनोज)।	२२५०००)	१५००	४२ २७/१००	१९०७से ८ तक * फिर १९१० में

* वाटरटाउनमें सन १९०९ ई०में एलोपैथिक हासपिटलसे इतने अधिक पुराने रोगी आगये थे, कि उसके कारण उस सालके हिसाब तथा गणनाका पूरापता नहीं लगसका।

एलोपैथिक चिकित्सा द्वारा ।

स्थान	निरोगियोंकी संख्या प्रतिशत	समय
मेरडोकिनो	३४ $\frac{४१}{१००}$	१८९५ से १९१० तक ।
स्टोकन	३१ $\frac{२५}{१००}$	" "
नापा	३४ $\frac{३७}{१००}$	" "
न्यूयार्कके ११ सरकारी हासपिटल ।	२३ $\frac{९०}{१००}$	१८८५ से १९१० तक ।
एगन्यूज़	६ $\frac{४१}{१००}$	१८८५ से १९०६ तक ।

होमियोपैथीके चार अस्पतालोंमें उक्त समय के निरोगियोंकी औसत संख्या ४३ $\frac{३१}{१००}$ प्रतिशत ।

उसी समयके लिये १५ एलोपैथी के अस्पतालोंके निरोगियों की औसत संख्या २८ $\frac{८०}{१००}$ प्रतिशत ।

विसूचिका अर्थात् हैजे का रोग ।

एलोपैथी	प्रतिशत मृत्यु संख्या	होमियोपैथी	प्रतिशत मृत्यु संख्या
आसलरको बनाई 'प्रैकटिस आफ़ मेडिसिन' पुस्तकके पृष्ट २३२से उद्धृत	३०से ८० तक	डा० ब्राडफ़ोर्ड की 'लाजिक आफ़ फ़ीगर्स' के पृष्ठ संख्या ११६ तथा डा० कुइनकी १८३१ से ३२ सनकी लण्डनके १० दस अस्पतालोंकी रिपोर्ट ।	६
"अलबर्ट्स सिस्टम आफ़ मेडिसिन" पुस्तक केखण्ड १ पृष्ठ ८०८ से उद्धृत ।	५०	बवेरिया के राजा के एलोपैथिक चिकित्सक डा० राथ विवश होकर लिखते हैं कि सन १८३१से ३२ई०में ।	७
रसा स्टेटके इमपीरियल कौंसिलं के सभापति डा० ब्राडफोर्ड अपनी पुस्तक "लाजिक आफ़ फ़ीगर्स" के पृष्ठ संख्या ११८में लिखते हैं कि १८३१से १८३२ सन तक ।	४०	हैनिमैनकी एकाडेमी आफ़ मेड्रिसिन न्यूयार्क की रिपोर्ट १८४६ ई०में ।	६

नेमोनिया (Pneumonia)

पिछले ३० वर्षों में

स्थान	एलोपैथिकसे मृत्यु संख्या प्रतिशत	होमियोपैथीसे मृत्युसंख्या प्रतिशत
अमेरीकामें	२९ $\frac{४}{१००}$	३ $\frac{९}{१००}$
स्वीडेनमें	२८ $\frac{८}{१००}$	१० $\frac{८}{१००}$

गर्मीमें बच्चोंकी हैजे की बीमारी ।

एलोपैथीसे मृत्यु संख्या प्रतिशत ८
होमियोपैथीसे " " " ० (कोई नहीं)

मिचगांग सरकारी जेलमें परीक्षाका फल

समय	कितने रोगियोंमें कितने मरे		कितने समयकी हानि		एलो पैथी	होमियो पैथी
	एलोपैथी	होमियोपैथी	एलोपैथी	होमियोपैथी		
१८५७ से	४३५में ३९	५४५ में	२३०००	१००००	रू०	रू०
१८५९ तक	मरे	२० मरे	दिन	दिन	५०३४	१५००
१८७० से						
१८७१ और			४०००	११००	५४००	२७००
१८७३ से १८७४ को			दिन	दिन		

उक्त रिपोर्टके प्रमाणों द्वारा यह बात सर्वतोभाव सिद्ध होती है कि एलोपैथिक चिकित्सासे होमियोपैथिक चिकित्सामें ४ बातोंका विशेष लाभ है।

(१) मनुष्य पीड़ा कम दिन पाता है।
(२) धनकी बचत होती है।
(३) समयका लाभ होता है।
(४) अधिक रोगी अच्छे होते हैं।

इतना सब देखते हुये भी यदि कोई रोगग्रसित होनेपर होमियोपैथिक चिकित्साको छोड़ दूसरी ओर ध्यान दे तो उसके भाग्य दोषके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इस बातका सबसे अधिक विचार म्युनिसिपलिटी, दातव्य, औषधालय, फ़ौज, जेल, तथा पुलिस आदि स्थानोंमें होना आवश्यक है क्योंकि उक्त स्थानोंमें समय तथा धनका लाभ उठानेके लिये होमियोपैथिक चिकित्सासे बढ़कर दूसरी प्रथा नहीं।

समाप्त।

असली ओषधियां ।

हम हरप्रकारकी होमियोपैथिक ओषधियां अमेरीकासे मंगाते हैं और विशुद्ध हालतमें अपने व्यापारियों तथा रोगियोंको बहुत जांचकर भेजते हैं, विशेषता यह है, कि शीशियोंपर ओषधियोंका नाम हिन्दीमें भी है, जिससे केवल हिन्दी जाननेवालोंको भी विशेष सुविधा है, मूल्य निम्नलिखित रूपसे हैं ।

१ शक्तिसे १२ तक	एक ड्राम ।)	२ डाम ।=)
१३ „ से ३० „	„ ।=)	„ ॥)
१०० „ से २०० „	„ ॥।)	„ १।)
५०० शक्तिकी	आधा ड्राम ॥>)	१ „ १)
१००० „	„ १॥)	१ „ २॥)

इसके अतिरिक्त शूगर आफ़ मिल्क, ग्लेब्युल्स, कार्क, शीशी, ऊपरी व्यवहार की ओषधियां तथा होमियोपैथिक चिकित्सामें व्यवहार होने योग्य सब वस्तुयें हमारे यहां सुविधासे मिलती हैं।

५) से अधिक ओषधियां मंगानेपर १२॥) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

मिलनेका पता :—

यूनाइटेड होमियोपैथिक फ़ार्मेसी ।

नं० ३० बांसतल्ला गली, कलकत्ता ।

कैलेन्डुलेटेड सोप ।

यह साबुन ओरियण्टल इन्वेस्टीगेटिङ्ग वर्क्स (Oriental Investigating Works) में बहुत होशियार डाक्टरोंकी निगरानीमें तैयार किया जाता है। यह सब प्रकारके चर्मरोगोंके लिये अव्यर्थ और परीक्षित साधन है। मुंहासे, फुन्सी, दाद, खाज आदिको यह आश्चर्य-जनक लाभ पहुंचाता है। सरके फोड़े फुन्सी इत्यादि, जिनमेंकि बालोंके कारण और कोई दवाई नहीं लगाई जा सकती उनमें एक दोबारके उपयोगसे ही यह साबुन जादूसा असर दिखलाता है और थोड़े समय में उनको नष्ट कर देता है।

गरम पानीके साथ इस साबुनका प्रयोग करनेसे घाव साफ़ रहते हैं और शीघ्र भर जाते हैं, इसके अतिरिक्त स्नान आदिके लिये तो इससे बढ़कर दूसरा साबुन है ही नहीं ; इससे स्नान करनेसे चित्तको बड़ी प्रसन्नता और आनन्द होता है, और चर्म स्वच्छ कोमल और अतीव सुन्दर हो जाता है। जो पुरुष इससे बराबर स्नान करता है, उसको किसी प्रकारका चर्मरोग नहीं हो सकता। जो लोग कार्बोलिक नीम या अन्य दवाइके साबुनोंका प्रयोग कर रहे हैं, उनको चाहिये कि इस लाभदायक कैलेन्डुलेटेड साबुनका भी एकबार प्रयोग करके यह देखलें कि इसके बारेमें जो कहा गया है वह वस्तुतः सत्य है या नहीं।

इसका जो एक बार प्रयोग करेगा वह फिर दूसरा साबुन कभी भी न छुयेगा। मूल्य तीन टिकियोंके एक बक्सका १॥) रु०।

डाकृर जी० यल० चौबे सिविल सार्जन साहब लिखते हैं:—
"मैंने कैलेण्ड्र लेटेड साबुनका कई प्रकारके चर्म रोगोंमें व्यवहार किया और सर्वदा इसको बहुत सन्तोष-जनक पाया, और खजुलीके लिये तो मानों यह रामबाण औषधीही है। नित्य-प्रति इससे स्नान करनेसे चमड़ा मुलायम और साफ़ रहता है. इस साबुनमें किसी प्रकारका दूषित पदार्थ नहीं है।"

यूनाइटेड होमिओपैथिक फ़ार्मेसी,
न० ३० बांसतल्ला गली, कलकत्ता।
